वन्दना

डॉ० कृष्ण लाल

वन्दना

डॉ० कृष्ण लाल
आचार्य, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रस्तावना

श्रद्धालुजन श्रद्धापूर्वक वेदमन्त्रों को पूज्य मानकर पढ़ते हैं, उनका उच्चारण करते हैं। वे महर्षि दयानन्द तथा अन्य प्राचीन एवं अर्वाचीन विद्वानों द्वारा किए गये उनके अर्थ भी पढ़ते हैं। परन्तु अनेक लोगों से यह सुनने को मिला कि वे अर्थ या तो वहुत विस्तृत हो जाते हैं, या अनेक विषयों के एक साथ उलझ जाने से जटिल हो जाते हैं, और सामान्य व्यक्ति को समझ नहीं आते। वहुत से व्यक्ति संस्कृत शब्दों को अलग-अलग समझकर अर्थ तक पहुँचना चाहते हैं, उनको भी वहुत बार मन्त्रगत शब्दों के अतिरिक्त वाहर के अर्थ आ जाने से अथवा संस्कृत के साधारण ज्ञान वाले व्यक्ति को विभक्तियों के (व्यत्यय के कारण) अपरिचित अर्थ होने से अस्पष्टता का अनुभव होता है।

इन सभी कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए केवल पैंतालीस मन्त्रों का यह संक्षिप्त संग्रह बनाया गया है। आशा है कि इससे उपरिलिखित कठिनाइयाँ दूर होंगी और पाठक मन्त्रों के अधिक निकट पहुँच सकेंगे। इस संग्रह में आध्यात्मिक व्याख्या को प्रमुखता प्रदान की गई है क्योंकि महर्षि दयानन्द ने प्रत्येक मन्त्र का परमेश्वर-परक अर्थ तो अवश्य ही स्वीकार किया है और यह बात वेद के अध्ययन से स्पष्ट भी होती है।

वन्दना के स्तुति और प्रार्थना, दो प्रमुख अंग हैं। मन्त्रों को सभी वेदों और कहीं-कहीं उपनिषदों से बिना किसी क्रम का ध्यान रखे लिया गया है और एक स्तुति का मन्त्र फिर प्रार्थना का मन्त्र—इस योजना से उन्हें रखा गया है। शिक्षा-संस्थाओं में प्रतिदिन एक स्तुति का और एक प्रार्थना का मन्त्र अर्थ-सहित बोला जा सकता है।

स्वरचिह्नों का महत्त्व सर्वविदित है। परन्तु सामान्य पाठक को उनका

बोध न होने के कारण मन्त्र के अक्षरों पर स्वरचिह्न अंकित नहीं किये गये।

मन्त्र का पाठ पहले है। मन्त्र के पाठ के पश्चात् सन्धि-विच्छेद करके मन्त्रक्रम में ही एक-एक शब्द को अलग करके दिखाया गया है। फिर उन शब्दों को सुविधा और स्पष्टता के लिये स्तम्भाकार रखकर अन्वयपूर्वक उनका सरल-सुबोध अर्थ दिया गया है। अन्त में भावार्थ के अन्तर्गत मन्त्र का भाव समझाने के लिये उसकी संक्षिप्त व्याख्या की गई है। इस भावार्थ में प्रत्येक शब्द की आध्यात्मिक व्याख्या को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती ने वेद का प्रगाढ़ अध्ययन किया है। वे हमारे पूज्य प्रेरणास्रोत हैं। पीछे उन्होंने 'वेदमीमांसा', 'तत्त्वमसि' आदि अनेक ग्रन्थों में वेद के कई जटिल विषयों को तर्कपूर्वक स्पष्ट किया है। ऐसे विद्वान् संन्यासी मनीषी का आशीर्वाद प्राप्त कर मैं स्वयं को धन्य मानता हूँ। पुस्तक के प्रकाशनार्थ आर्थिक सहायता की व्यवस्था करके भी उन्होंने मुझे प्रोत्साहित किया है। केवल मैं ही उनका आभारी नहीं हूँ, अपितु पाठक भी उनके आशीर्वाद का फल प्राप्त करेंगे।

विश्वनीड, ई ९३७,
सरस्वती विहार,
दिल्ली ११००३४

—कृष्ण लाल

भूमिका

साधन से साध्य का आसन ऊपर होता है। साधन की अपेक्षा तभी तक होती है जब तक साध्य की प्राप्ति नहीं हो जाती। भौतिक पदार्थ जीवात्मा की अनन्त यात्रा में तात्कालिक साधनमात्र हैं। जीवात्मा आगे बढ़ जाता है और ये सब यहीं धरे रह जाते हैं। पदार्थों की इस वास्तविकता को समझ लेने के पश्चात् विवेकी पुरुष आत्मवित् हो जाता है—अपने शाश्वत स्वरूप को पहचानने लगता है। द्रव्यादि जड़ पदार्थ परिणामी एवं नश्वर हैं; एक आत्म-तत्त्व ही इनसे भिन्न अविनाशी है—ऐसा जानकर जन्म-जन्मान्तर के रूप में आवर्त्तमान चक्र से निकलने की सोचने लगता है। यही ज्ञान आत्मा को निःश्रेयस-मार्ग में प्रवृत्त करता है।

लक्ष्यहीन जीवन व्यर्थ है। किन्तु जो लक्ष्य देश-काल-स्थिति के अनुसार नियत किया जाता है, वह जीवन में स्थिरता नहीं ला सकता। स्थिर लक्ष्य वह है जिसे पा लेने पर अन्य कुछ पाने की आवश्यकता नहीं रहती—समस्त इच्छायें स्वतः विलीन हो जाती हैं। जीवन का यह लक्ष्य भौतिक कभी नहीं हो सकता। भौतिक पदार्थों से होने वाले सुख या आनन्द की अनुभूति भी भौतिक शरीर का नहीं, अभौतिक आत्मा का विषय है। इस प्रकार जीवन का ध्येय अन्ततः आध्यात्मिक ठहरता है।

चराचर जगत् का ज्ञान करानेवाला शब्दरूपी ब्रह्म वेद है। ज्ञान-विज्ञान का अक्षय भण्डार वेद वह दिव्य ज्ञान है, जिसके आलोक में मनुष्य अभ्युदय तथा निःश्रेयस दोनों की सिद्धि कर सकता है। वैदिक धर्मियों के लिये वेद ही परम प्रमाण है। जन्म से लेकर मरणपर्यन्त सब व्यवहार वेदों पर आश्रित है। इसीलिये हमारे ब्राह्मणों ने बड़े प्रयत्न से उन्हें ऐसे कण्ठस्थ करके रक्खा है

जिससे उनमें एक स्थान पर भी स्वर-मात्रा-वर्ण का विपर्यास नहीं मिलता।

कुछ लोगों की मान्यता है कि वेद केवल अपरा विद्या के ग्रन्थ हैं; परा विद्या के लिये उपनिषद् प्रमाण हैं। 'वन्दना' के रूप में डॉ० कृष्णलाल जी द्वारा प्रस्तुत वेदमन्त्रों का यह संकलन इस मान्यता को मिथ्या सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है। उपनिषदों का परा विद्या के ग्रन्थ होना निर्विवाद है। उनमें अपरा विद्या के लिये कोई स्थान नहीं है। किन्तु वेद केवल परा विद्या के ग्रन्थ न होकर अपरा विद्या के भी हैं। वेदों में जहाँ ब्रह्मविद्या का मूल है वहाँ वे मनुष्य के लिये अपेक्षित लौकिक ज्ञान का भी आदि स्रोत हैं। सभी उपनिषद् वस्तुतः ईशोपनिषद् का विस्तार हैं और ईशोपनिषद् बहुत थोड़े अन्तर के साथ यजुर्वेद का चालीसवाँ अध्याय है। इस प्रकार अध्यात्मशास्त्र के रूप में उपनिषदों का मूल वेद में ही है।

अपनी शक्तियों के विकास के लिये परमात्मा की स्तुति एवं उससे विविध शक्तियों को प्राप्त करना आवश्यक है। परमात्मा के अनेकविध ऐश्वर्य के कारण उसका विविध रूप में स्तवन किया जाता है। आध्यात्मिक प्रक्रियानुसार वेद का प्रतिपाद्य ब्रह्म है। इसलिये वेदमन्त्रों के अनेकार्थक होने पर भी प्रस्तुत संकलन में आध्यात्मिक अर्थ ही दिया गया है। परमेश्वर के निरतिशय होने से उसका ज्ञान भी निरतिशय है। आकाश अनन्त है। उसका पार तो गरुड़ भी नहीं पा सकता, फिर भी प्रत्येक पक्षी अपने सामर्थ्य के अनुसार उड़ान भर ही लेता है। वेद इस प्रकार के प्रेरणाप्रद मन्त्रों का अथाह सागर है; उसमें से कोई कितना ही ग्रहण कर ले तो भी 'पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते'। आशा है, चुने हुए मन्त्रों का यह संग्रह 'भूयिष्ठान्ते नमउक्तिं विधेम' की दिशा में पाठकों का मार्गदर्शन करेगा।

डी-१४/१६, माडल टाउन, —विद्यानन्द सरस्वती
दिल्ली

१

गायत्री मन्त्र

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

—ऋग्वेद ३।६२।१०

(ओ३म् प्रत्येक मन्त्र के आरम्भ में परमेश्वर-स्मरण के रूप में बोला जाता है। भूः, भुवः, स्वः—ये तीन महाव्याहृतियाँ हैं, मन्त्र का अंश नहीं।)

पदच्छेद—भूः, भुवः, स्वः। तत्, सवितुः, वरेण्यम्, भर्गः, देवस्य, धीमहि। धियः, यः, नः, प्रचोदयात् ॥

अन्वय तथा पदार्थ

भूः—पृथिवी
भुवः—अन्तरिक्ष
स्वः—आकाश।
सवितुः—(उस) सर्वोत्पादक
देवस्य—परमेश्वर के
तत्—उस (सर्वप्रसिद्ध)
वरेण्यम्—पूजनीय
भर्गः—तेज का
धीमहि—हम ध्यान करें,
यः—जो (परमेश्वर)
नः—हमारी
धियः—बुद्धियों को
प्रचोदयात्—अच्छी प्रकार प्रेरित करे।

भावार्थ—पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा आकाश अर्थात् सकल ब्रह्माण्ड को ध्यान में रखकर परमात्मा की विशालता का हम अनुभव करते हैं। उस सर्वोत्पादक परमेश्वर के उस प्रसिद्ध पूजनीय तेज का हम ध्यान करें जो हमारी बुद्धियों को सत्कर्मों में प्रेरित करे, सोचने की शक्ति दे और अज्ञानरूपी अन्धकार के स्थान पर ज्ञान के प्रकाश से उन्हें उद्भासित करे। परमेश्वर का तेज सर्वप्रसिद्ध है। उसे तेजःस्वरूप बताया गया है। उसके प्रकाश से ही सब-कुछ प्रकाशित होता है। वही सारे संसार का प्रेरक है। सभी बड़े से बड़े और छोटे से छोटे प्राणी और पदार्थ उसकी प्रेरणा से ही अपने-अपने कार्य करते हैं। वह परमेश्वर हमारी सबकी बुद्धियों को अच्छी प्रकार प्रेरित करे—इसका भाव यह है कि हम उसकी विभूतियों का ध्यान करें और उनसे सत्कर्मों में हमारी प्रवृत्ति हो। □

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त संकिर।—अथर्व० ३।२४।५

हे मनुष्य, तू सौ हाथों वाला होकर धन इकट्ठा कर और सहस्र हाथों वाला होकर उसे बांट।

२

शान्तिपाठ

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः, सर्वं शान्तिः, शान्तिरेव शान्तिः, सा मा शान्तिरेधि ॥—यजु० ३६।१७

पदच्छेद—द्यौः शान्तिः, अन्तरिक्षम् शान्तिः, पृथिवी शान्तिः, आपः शान्तिः, ओषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिः, विश्वेदेवाः शान्तिः, ब्रह्म शान्तिः, सर्वम् शान्तिः, शान्तिः एव शान्तिः, सा मा शान्तिः एधि ॥

अन्वय तथा पदार्थ

द्यौः—आकाश
शान्तिः—शान्ति-
(दायक हो)
अन्तरिक्षम्—अन्तरिक्ष
शान्तिः—शान्ति-
(दायक हो)
पृथिवी—पृथिवी

शान्तिः—शान्ति-
(दायक हो)
आपः—जल
शान्तिः—शान्ति-
(दायक हों)
ओषधयः—ओषधियाँ
अर्थात् पौधे आदि,

शान्तिः—शान्ति-(दायक हों)।	शान्तिः—शान्ति-(दायकहो),
वनस्पतयः—वनस्पतियाँ अर्थात् बड़े वृक्षादि	शान्तिः—शान्ति
	एव—ही
	शान्तिः—शान्ति (हो),
शान्तिः—शान्ति-(दायक हों)	सा—वह
ब्रह्म—महान् परमेश्वर	शान्तिः—शान्ति
शान्तिः—शान्ति-(दायक हो)	मा—मुझे (भी)
सर्वम्—सब-कुछ	एधि—(प्राप्त) हो !

भावार्थ—मनुष्य का जीवन शान्त तभी हो सकता है, जब उसका चित्त शान्त हो और चित्त तभी शान्त होगा जब उसके आस-पास का वातावरण उसे शान्त प्रतीत होगा। इसीलिए अपने चित्त को प्रेरणा देने के लिए पहले आकाश, अन्तरिक्ष तथा पृथिवी—ब्रह्माण्ड के तीनों प्रमुख भागों की शान्ति की प्रार्थना की है। फिर क्योंकि मनुष्य का दैनिक सम्बन्ध पार्थिव वस्तुओं से अधिक है, अतः यहाँ के जल, अनाज, पौधे, वृक्ष, फल आदि की शान्ति की भी प्रार्थना की है। इसके साथ ही यह भी कहा कि महान् परमेश्वर का तो गुण ही शान्त है, और उसी में सर्वस्व आ जाता है। इस प्रकार से चारों ओर शान्ति ही शान्ति हो और वही शान्ति हमारे मन को भी शान्त रूप से सोचने की तथा कार्य करने की शक्ति दे। यदि मेरा चित्त शान्त है तो मैं अपने कार्यों और मनोभावों से अपने आसपास का वातावरण शान्त बना सकता हूँ और शान्ति का अनुभव कर सकता हूँ। □

३

स्तुति

विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोस्ते सतः परियन्ति केतवः।
व्यानशिः पवसे सोम धर्मभिः पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि ॥

—ऋ० ९।८६।५

पदच्छेद—विश्वा, धामानि, विश्वचक्षः, ऋभ्वसः, प्रभोः, ते, सतः, परियन्ति, केतवः। व्यानशिः, पवसे, सोम, धर्मभिः, पतिः, विश्वस्य, भुवनस्य, राजसि ॥

अन्वय तथा पदार्थ

विश्वचक्षः—हे सर्वद्रष्टः
ऋभ्वसः—अत्यन्त प्रकाश युक्त
प्रभोः—स्वामी
सतः—होते हुए
ते—आपके
केतवः—चिह्न
विश्वा—सब
धामानि—स्थानों को
परियन्ति—घेरे हुए हैं।

सोम—हे शान्त (प्रभो)!
व्यानशिः—व्यापक होते हुए (आप)
धर्मभिः—(अपने) नियमों से
पवसे—(सब-कुछ) पवित्र करते हैं।
विश्वस्य—समग्र
भुवनस्य—संसार के
पतिः—स्वामी (आप)
राजसि—विराज रहे हैं।

भावार्थ—वह ईश्वर इस संसार का स्वामी है। वह इतना विशाल है कि प्रत्येक स्थान पर प्रत्येक पदार्थ में उसके चिह्न विद्यमान हैं। वह प्रकाशयुक्त है—सबको ज्ञान का प्रकाश देता है। वह शान्त है—उसके ध्यान से सबको सब प्रकार की शान्ति प्राप्त होती है। उसके जो शाश्वत नियम हैं, उनसे सब वस्तुएँ सुचारु रूप से विद्यमान हैं—वे सब अपने-अपने कार्य नियमानुसार कर रही हैं और इसी में उनकी शोभा है। हम ईश्वर के इन सब गुणों का स्मरण करते हैं और अभिलाषा करते हैं कि ये ही गुण हममें भी आ जायें। साथ ही ईश्वर की व्यापकता को समझते हुए, सब स्थानों पर उसकी सत्ता का आभास करते हुए हम कोई भी अनुचित कार्य न करें। □

यावद् ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक्।—ऋ० १०।११४।८

जहाँ तक ब्रह्म (वेद अथवा परमेश्वर) स्थित है उतनी वाणी है।

४

प्रार्थना

तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि। आयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि।
वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण।।
—यजु० ३।१७

पदच्छेद—तनूपाः, अग्ने, असि, तन्वम्, मे, पाहि। आयुर्दाः, अग्ने, असि, आयुः, मे, देहि। वर्चोदा, अग्ने, असि, वर्चः, मे, देहि। अग्ने, यत्, मे, तन्वाः, ऊनम्, तत्, मे, आपृण।।

अन्वय तथा पदार्थ

अग्ने—हे प्रकाश-स्वरूप प्रभो !	अग्ने—हे प्रकाश-स्वरूप प्रभो !
(त्वम्)—(आप)	(त्वम्)—(आप)
तनूपाः—शरीर-रक्षक	आयुर्दाः—आयु देने वाले
असि—हैं,	असि—हैं,
मे—मेरे	मे—मुझे
तन्वम्—शरीर की	आयुः—आयु
पाहि—रक्षा करिये।	देहि—दीजिये।

अग्ने—हे प्रकाश-स्वरूप प्रभो !
(त्वम्)—(आप)
वर्चोदाः—तेज देनें वाले
असि—हैं,
मे—मुझे
वर्चः—तेज
देहि—दीजिये।

अग्ने—हे प्रकाश-स्वरूप प्रभो !
यत्—जो (कुछ)
मे—मेरे
तन्वाः—शरीर में से
ऊनम्—कम है,
तत्—उसे
मे—मेरे लिये
आपृण—पूरा कर दीजिये।

भावार्थ—जीवन में सफल होने के लिये ज्ञान, कर्म आदि सब गुणों की अपेक्षा है। परन्तु उन सबका मूल शरीर ही है। मनुष्य कोई भी कार्य तब तक नहीं कर सकता जब तक उसका शरीर स्वस्थ न हो। यहाँ तक कि स्वस्थ मन तथा विचार भी स्वस्थ शरीर से ही उत्पन्न होते हैं। इसलिए इस मन्त्र में प्रार्थना है कि ईश्वर हमें अपने शरीर को स्वस्थ रखने की शक्ति तथा बुद्धि दें। वे हमें दीर्घायु तथा तेज दें जिससे हम सब कार्य अधिक अच्छे ढंग से और अधिक देर तक कर सकें। हमारे शरीर में किसी प्रकार की कोई कमी न हो, जिससे शरीर की ओर से निश्चिन्त होकर हम अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकें और परहित के कार्य कर सकें। □

५

स्तुति

यस्तस्तम्भ सहसा विज्मो अन्तान् बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण ।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥

— ऋ० ४।५०।१

पदच्छेद—यः, तस्तम्भ, सहसा, वि, ज्मः, अन्तान्, बृहस्पतिः, त्रिसधस्थः, रवेण । तम्, प्रत्नासः, ऋषयः, दीध्यानाः, पुरः, विप्राः, दधिरे, मन्द्रजिह्वम् ॥

अन्वय तथा पदार्थ

यः—जो
त्रिसधस्थः—तीनों लोकों में स्थित
बृहस्पतिः—बड़ों का स्वामी (परमेश्वर)
रवेण—शब्द से
सहसा—बलसहित
ज्मः—पृथिवी के
अन्तान्—किनारों को
वि—पृथक्
तस्तम्भ—स्थिर करता है,
तम्—उस
मन्द्रजिह्वम्—कोमल ध्वनि-वाले (प्रभु) को
प्रत्नासः—प्राचीन
विप्राः—मेधावी
ऋषयः—ऋषि
दीध्यानाः—ध्यान करते हुए
पुरः—सामने
दधिरे—रखते हैं
] नेता मानते हैं

भावार्थ—ईश्वर पृथिवी, अन्तरिक्ष और आकाश—तीनों लोकों में विद्यमान है। वह बड़ी से बड़ी शक्ति का भी स्वामी है। उसके शब्द अर्थात् आदेश-शक्ति में इतना बल है कि वह पृथिवी तथा अन्य लोकों को भी विशिष्ट सीमाओं में बाँधे हुए है। उसके शासन में तनिक भी अनियमितता नहीं है। आदेश में इतना बल होते हुए भी उसकी ध्वनि में कोमलता है, तथा माधुर्य है। प्राचीन मेधावी ऋषि उसके गुण का ध्यान करते हुए उसे ही अपना नेता मानते हैं और उसका अनुकरण करने का प्रयत्न करते हैं अर्थात् वे भी कोमल वाणी द्वारा अपने आसपास के जनों को जीतने का प्रयास करते हैं। हमें भी उस ईश्वर को नेता मानकर उन्हीं ऋषियों के गुणों को अपनाने का प्रयास करना चाहिये। □

यादृगेव ददृश तादृगुच्यते।—ऋ० ५।४४।६

जैसा दिखाई देता है वैसा ही कहा जाता है, अर्थात् सत्य बोलना उत्तम नियम है।

६

प्रार्थना

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥—ईशा० १५

पदच्छेद—हिरण्मयेन, पात्रेण, सत्यस्य, अपिहितम्, मुखम् । तत्, त्वम्, पूषन्, अपावृणु, सत्यधर्माय दृष्टये ॥

अन्वय तथा पदार्थ

सत्यस्य—सत्य का

मुखम्—मुख

हिरण्मयेन—सुवर्ण वाले

पात्रेण—पात्र से

अपिहितम्—ढका हुआ है ।

पूषन्—हे पोषक प्रभो !

त्वम्—आप

तत्—उसे

सत्यधर्माय—सत्य और धर्म से युक्त

दृष्टये—दृष्टि के लिए

अपावृणु—हटा दीजिये ॥

भावार्थ—आज हम संसार के भौतिकवाद में इतने लीन हो गये हैं और इतने धनासक्त हो गये हैं कि धन के या सुवर्ण के आवरण के कारण उसके पीछे जो वास्तविक तत्त्व छिपा रहता है वह हमारी दृष्टि में नहीं आता। हम धन को ही सब-कुछ मानकर उसके मोह में फँसे रहते हैं और शाश्वत सुख से वञ्चित रहते हैं। इस मन्त्र में पोषक प्रभु से प्रार्थना की गई है कि वे हमें इतना बुद्धि-बल दें जिससे हम उस आवरण को हटाकर उससे पीछे भी तत्त्व-दर्शन कर सकें। हम एक सत्य को खोज लें; हमारी दृष्टि उस सत्य के द्वारा धर्म-युक्त हो जाय (क्योंकि सत्य को ही धर्म माना गया है)। इस प्रकार से क्षण-भंगुर धन के मोह में न फँसकर हम चिरन्तन सुख-शान्ति के भागी होंगे। □

घृतात् स्वादीयो मधुनश्च वोचत।—ऋ० ८।२५।२०

(हे मनुष्यो,) घी और मधु (शहद) से अधिक स्वादिष्ठ बोलो।

७

स्तुति

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः ।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ।।
—यजु० ३१।२०

पदच्छेद—यः, देवेभ्यः, आतपति, यः, देवानाम्, पुरोहितः, पूर्वः, यः, देवेभ्यः, जातः, नमः, रुचाय, ब्राह्मये ।

अन्वय तथा पदार्थ

यः—जो
देवेभ्यः—देवताओं के लिए
आतपति—प्रकाशित होता है,
यः—जो
देवानाम्—देवताओं का
पुरोहितः—सब कार्यों में अग्रणी
(अस्ति)—(है,)

यः—जो
देवेभ्यः—सब देवताओं से
पूर्वः—पहले
जातः—उत्पन्न हुआ,
(तस्मै)—(उस)
रुचाय—दीप्यमान
ब्राह्मये—ब्रह्मरूप परमेश्वर को
नमः—नमस्कार है !

भावार्थ—इस समग्र सृष्टि से पूर्व भी ईश्वर विद्यमान था। सब दैवी शक्तियों अर्थात् सूर्य, अग्नि, वायु आदि को भी इसी से प्रेरणा प्राप्त होती है। जो कार्य इस संसार में कोई महान् से महान् शक्ति भी करती है, वह इसकी प्रेरणा के बिना सम्भव नहीं। सारांश यह कि इस विविध रूपों वाले विश्व के पीछे वही एकमात्र प्रेरक शक्ति है। वही एक ऐसा प्रकाश है जिसमें सब प्रकाश समाहित हो जाते हैं। सब भेद त्यागकर हम उस एक अद्वितीय शक्ति को श्रद्धापूर्वक नमस्कार करते हैं। □

आकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु।—अथर्व० ५।३।४

मेरे मन का चिन्तन सत्य हो।

८

प्रार्थना

विश्वेदेवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये ।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥
—ऋ० ५।५१।१३

पदच्छेद—विश्वेदेवाः, नः, अद्य, स्वस्तये, वैश्वानरः, वसुः, अग्निः, स्वस्तये, देवाः, अवन्तु, ऋभवः, स्वस्तये, स्वस्ति, नः, रुद्रः, पातु, अंहसः ॥

अन्वय तथा पदार्थ

अद्य—आज
विश्वेदेवाः—सब देवता
नः—हमारे
स्वस्तये—कल्याण के लिये
(सन्तु)—(हों,)
वैश्वानरः—सब मनुष्यों का अग्रणी
वसुः—धनरूपी (सबको बसानेवाला)

स्वस्तये—कल्याण के लिए
अग्निः—अग्नि (तेजोरूप परमेश्वर)
(अस्तु)—(हो)
ऋभवः—ऋभु (विद्या से तेजस्वी विद्वान्)
देवाः—देवता (दानादि गुणयुक्त)
स्वस्तये—कल्याण के लिये
(नः)—(हमारी)

अवन्तु—रक्षा करें,
रुद्रः—रुद्र (दुष्टों को रुलानेवाला परमेश्वर)
स्वस्ति—कल्याणपूर्वक
अंहसः—पाप से
नः—हमें
पातु—बचाये।

भावार्थ—ईश्वर की विभिन्न शक्तियों से कल्याण के लिए प्रार्थना की गई है। ऋभु ईश्वर की उस शक्ति का नाम है जो सृष्टि के निर्माण-कार्य में सहायक होती है। इस मन्त्र में विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि पाप से बचाने की प्रार्थना ईश्वर की रुद्र नामक शक्ति से की गई है। रुद्र का अर्थ कठोर, अर्थात् नियन्ता है। पाप से तभी बचा जा सकता है जब प्रकृति के शाश्वत नियमों का पालन किया जाय। 'नः' में बहुवचन के प्रयोग से यह स्पष्ट है कि केवल एक अपने लिये यह प्रार्थना नहीं की गई, अपितु यह समस्त समाज के लिये है। □

सखा नो असि परमं च बन्धुः।—अथर्व० ५।११।११

(हे परमेश्वर,) आप हमारे मित्र हैं और श्रेष्ठ सम्बन्धी हैं।

९

स्तुति

यः पुष्पिणीश्च प्रस्वश्च धर्मणाऽधि दाने व्यवनीरधारयः ।
यश्चासमा अजनो दिद्युतो दिव उरुरूर्वां अभितः सास्युक्थ्यः ।।

—ऋ० २।१३।७

पदच्छेदः—यः, पुष्पिणीः, च, प्रस्वः, च, धर्मणा, अधि, दाने, वि, अवनीः, अधारयः, यः, च, असमाः, अजनः, दिद्युतः, दिवः, उरुः, ऊर्वान्, अभितः, सः, असि, उक्थ्यः ।।

अन्वय तथा पदार्थ

यः—जिस
(त्वम्)—(आपने)
धर्मणा—नियम से
पुष्पिणीः च—फूलों वाली
च—और
प्रस्वः—फल देने वाली
अवनीः—भूमियों को
दाने अधि—दान देने के निमित्त

व्यधारयः—धारण किया है
च—और
यः—जिसने
दिवः—स्वर्ग के अतिरिक्त
असमाः—विविध प्रकार के
दिद्युतः—चमकने वाले (लोकों को)
अजनः—उत्पन्न किया है,
उरुः—स्वयं महान् (आपने)

ऊर्वान्—बहुत-से महान् पदार्थों को (त्वम्)—(आप)
(अजनः)—उत्पन्न किया है, उक्थ्यः—स्तुत्य
सः—वह असि—हैं।

भावार्थ—ईश्वर नें जो यह विविध प्रकार की अनन्त सृष्टि की है, उसके कारण वह स्तुत्य है। इस सृष्टि में महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सारी सृष्टि नियम-बद्ध है—कहीं भी कोई वस्तु अनियमित नहीं है। अणु से अणु और महान् से महान् सभी पदार्थ एक नियम में बँधे हुए चल रहे हैं। एक और ध्यान देने की बात है कि ईश्वर की सृष्टि में सभी ओर दान देनें का पुण्य दृष्टिकोण विद्यमान है। भूमि पर जो कुछ भी उत्पन्न होता है वह सब उस पर रहनेवाले प्राणियों के निमित्त है—भूमि के स्वार्थ के लिए नहीं। ईश्वर की स्तुति करते हुए हमें उसकी नियमित कार्य करने और दान देने की दोनों विशेषताओं पर ध्यान देना चाहिये और इन गुणों को ग्रहण करने का प्रयत्न करना चाहिये। □

एनो मा नि गां कतमच्चनाहम्।—अथर्व० ५।३।४

मैं कभी भी किसी पापकर्म की ओर न जाऊँ।

१०

प्रार्थना

अयमग्ने जरिता त्वे अभूदपि सहसः सूनो न ह्यन्यदस्त्याप्यम् ।
भद्रं हि शर्म त्रिवरूथमस्ति त आरे हिंसानामप दिद्युमा कृधि ।।

—ऋ० १०।१४२।१

पदच्छेद—अयम्, अग्ने, जरिता, त्वे, अभूत्, अपि, सहसः, सूनो, न, हि, अन्यत्, अस्ति, आप्यम्, भद्रम्, हि, शर्म, त्रिवरूथम्, अस्ति, ते, आरे, हिंसानाम्, अप, दिद्युम्, आकृधि ।।

अन्वय तथा पदार्थ

अग्ने—हे प्रकाशस्वरूप ईश्वर !
अयम्—यह
जरिता—स्तोता
त्वे—आप पर
अपि—ही
अभूत्—(आश्रित) हुआ है,
सहसः सूनो—हे बल के पुत्र (अग्नि) !
अन्यत्—कोई दूसरा
आप्यम्—प्राप्त करने योग्य (आश्रय)
न हि—नहीं
अस्ति—है
हि—क्योंकि
ते—आपकी
भद्रम्—कल्याणपूर्ण
शर्म—शरण

त्रिवरूथम्—तीनों प्रकार की (पृथिवी, अन्तरिक्ष और आकाश सम्बन्धी)
अस्ति—है,
हिंसानाम्—हिंसाओं के
दिद्युम्—चमकते शस्त्र या क्रोध को
आरे—(हमसे) दूर
अपाकृधि—हटा दीजिये।

भावार्थ—इस संसार में कोई भी हमारा कितना ही हितैषी क्यों न हो, हमें उससे ईश्वर जैसा संरक्षण नहीं प्राप्त हो सकता। ईश्वर जो शरण देता है उसमें उसका कोई स्वार्थ नहीं होता, और साथ ही उसके संरक्षण का क्षेत्र भी अत्यन्त विस्तृत है। पृथिवी पर, अन्तरिक्ष में तथा आकाश में कोई भी शक्ति ईश्वर द्वारा सुरक्षित मनुष्य को हानि नहीं पहुँचा सकती। इसीलिये ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि हिंसाओं के शस्त्र अर्थात् क्रोध को हमसे दूर हटा दीजिये। मन्त्र में ईश्वर को विशेष रूप से बल का पुत्र कहा है। वास्तव में हम ईश्वर के निकट तभी पहुँच सकते हैं जब हम उसके कुछ गुण अर्जित करें। ईश्वर की शरण प्राप्त करने के लिये हमें स्वयं भी बल-संग्रह करना चाहिये और साथ ही अकारण क्रोध को भी हमें दूर रखना चाहिये क्योंकि सभी कलह-द्वेष का मूल यह क्रोध है। हममें क्रोध न हो, परन्तु दूसरे के अत्याचार के प्रतिकारार्थ बल अवश्य हो। □

११

स्तुति

**न तमंहो न दुरितं कुतश्चन नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः ।
विश्वा इदस्माद्ध्वरसो वि बाधसे यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते ।।**
—ऋ० २।२३।५

पदच्छेद—न, तम्, अंहः, न, दुरितम्, कुतश्चन, न, अरातयः, तितिरुः, न, द्वयाविनः, विश्वाः, इत्, अस्मात्, ध्वरसः, वि, बाधसे, यम्, सुगोपाः, रक्षसि, ब्रह्मणस्पते ।।

अन्वय तथा पदार्थ

ब्रह्मणस्पते—हे विश्व के स्वामी	न—न
(त्वम्) सुगोपाः—(आप) शोभन रक्षक	अंहः—पाप,
यम्—जिसकी	न—न
रक्षसि—रक्षा करते हैं,	दुरितम्—बुराई,
तम्—उस पर	न—न
कुतश्चन—कहीं से भी	अरातयः—शत्रु, दानहीनता की भावनायें
	न—(और) न (ही)

द्वयाविनः—दो जिह्वाओं वाले अर्थात्—अविश्वसनीय व्यक्ति	अस्मात्—इस (व्यक्ति) से
	(त्वम्)—आप
	विश्वाः—सभी
तितिरुः—आक्रमण करते हैं	ध्वरसः—हिंसाओं को
इत्—और	वि बाधसे—दूर करते हैं।

भावार्थ—ईश्वर की शरण से उत्तम शरण इस संसार में कोई भी नहीं है। परन्तु प्रायः मनुष्य ऐसा अनुभव नहीं करते। वे अहङ्कार के मद में अपने-आपको ही सर्वस्व मानने लगते हैं, और इसी कारण अन्त में वे अपने-आपको विपत्तियों से घिरा हुआ पाते हैं। सभी ओर उनके शत्रु उत्पन्न हो जाते हैं। उन्हें किसी से कोई भय नहीं होता, अतः वे पाप-कर्मों में आसक्त रहते हैं। यदि मनुष्य अहंकार का त्याग करके ईश्वर को ही सर्वश्रेष्ठ रक्षक माने, तभी वह पापों से बच सकता है और सभी ओर से सुरक्षित रहकर परम कल्याण की प्राप्ति कर सकता है। दानहीनता की भावना ही मनुष्य की शत्रु है, क्योंकि उसके कारण मनुष्य अपनी मनुष्योचित विशेषता खोकर पशुवत् हो जाता है। दो जिह्वाओं वाले व्यक्ति साँप के समान भयानक होते हैं। साँप की भी दो जिह्वायें होती हैं। वे व्यक्ति दो प्रकार की बातें करते हैं—किसी के आगे कुछ कहते हैं और उसके पीछे कुछ और कहते हैं। ऐसे व्यक्तियों पर विश्वास नहीं किया जा सकता। हाँ, ईश्वर के प्रति समर्पण से जो विवेक-पूर्वक कार्य करता है, वह इनकी चालों को समझकर इनसे बचा रह सकता है। □

१२

प्रार्थना

सविता पश्चात्तात् सविता पुरस्तात् सवितोत्तरात्तात्
सविताधरात्तात् ।
सविता नः सुवतु सर्वतातिं सविता नो रासतां दीर्घमायुः ।।
—ऋ० १०।३६।१४

पदच्छेद—सविता, पश्चात्तात्, सविता, पुरस्तात्, सविता, उत्तरात्तात्, सविता, अधरात्तात्, सविता, नः, सुवतु, सर्वतातिम्, सविता, नः, रासताम्, दीर्घम्, आयुः ।।

अन्वय तथा पदार्थ

सविता—सर्वोत्पादक परमेश्वर
पश्चात्तात्—पीछे से,
सविता—परमेश्वर
पुरस्तात्—सामने से,
सविता—परमेश्वर
उत्तरात्तात्—ऊपर से,
सविता—परमेश्वर
अधरात्तात्—नीचे से,
नः—हमारे लिए
सर्वतातिम्—पूर्णता को
सुवतु—उत्पन्न करें ।
सविता—परमेश्वर
नः—हमें
दीर्घम्—दीर्घ
आयुः—आयु
रासताम्—प्रदान करें ।

भावार्थ—परमेश्वर से प्रार्थना की गई है कि वे हमें सब ओर से पूर्ण करें, अर्थात् शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक रूप से हम पूर्ण हो जाएँ। और जब मनुष्य में तीनों प्रकार का स्वास्थ्य उत्पन्न हो जाता है, तभी वह दीर्घायु प्राप्त करने में सफल होता है। अतः यदि हम दीर्घायु प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें हर प्रकार के पूर्ण स्वास्थ्य लाभ का प्रयत्न करना चाहिए। □

न त्वदन्यः कवितरो न धीरतरो वरुण स्वधावन्।

—अथर्व० ५।११।४

हे अपने आप में स्थित सर्वव्यापी परमेश्वर, आपसे दूसरा न तो कोई अधिक क्रान्तदर्शी है और न ही अधिक बुद्धिमान् है।

१३

स्तुति

नमः पुरा ते वरुणोत नूनमुतापरं तुविजात ब्रवाम ।
त्वे हि कं पर्वते न श्रितान्यप्रच्युतानि दूलभ व्रतानि ।।

—ऋ० २।२८।८

पदच्छेद—नमः, पुरा, ते, वरुण, उत, नूनम्, उत, अपरम्, तुविजात, ब्रवाम, त्वे, हि, कम्, पर्वते, न, श्रितानि, अप्रच्युतानि, दूलभ, व्रतानि ।।

अन्वय तथा पदार्थ

वरुण—हे नियन्तृ परमेश्वर !
ते—आपको
पुरा—पहले
नमः—प्रणाम (करते रहे हैं)
उत—और
नूनम्—अब (भी करते हैं)
उत—और
तुविजात—हे सर्वत्र प्रकट होनेवाले !
अपरम्—भविष्य में भी
(नमः)—(प्रणाम के वचन)
ब्रवाम—हम बोलते रहें,
हि—क्योंकि
दूलभ—हे दुर्लभ प्रभो !

त्वे—आप पर

पर्वते—पर्वत के

न—समान

अप्रच्युतानि—न गिरने वाले

व्रतानि—नियम

कम्—सुरक्षित रूप से

श्रितानि—आश्रित हैं।

भावार्थ—वेद में ईश्वर को उत्तम नियन्ता की संज्ञा दी गई है। उसके विधान में सारा संसार विशेष नियमों के अनुसार चल रहा है। यदि ये नियम न हों तो एक क्षण में संसार में अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो जाये और वह सर्वनाश के मुँह में पड़ जाये। इसीलिए वे नियम दृढ़ हैं और उन पर दृढ़ता से पालन किया जाता है। उस महान् नियन्ता को हम सब प्रणाम करते रहे हैं और भविष्य में भी करते रहेंगे जिससे कि वह हमें नियमों पर अर्थात् सत्य मार्ग पर चलने की शक्ति दे। परमेश्वर दुर्लभ है क्योंकि कठोर नियमों का पालन किये बिना उसकी प्राप्ति अर्थात् अनुभूति सम्भव नहीं। □

विश्वेदेवा अभि रक्षन्तु मेह।—अथर्व० ५।३।४

यहाँ सब प्राकृतिक शक्तियाँ तथा समाज के विद्वान् मेरी रक्षा करें।

१४

प्रार्थना

अवन्तु नः पितरः सुप्रवाचना उत देवी देवपुत्रे ऋतावृधा ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ।।
—ऋ० १।१०६।३

पदच्छेद—अवन्तु, नः, पितरः, सुप्रवाचनाः, उत, देवी, देवपुत्रे, ऋतावृधा, रथम्, न, दुर्गात्, वसवः, विश्वस्मात्, नः, अंहसः, निष्पिपर्तन ।।

अन्वय तथा पदार्थ

सुप्रवाचनाः—उत्तम उपदेशक
पितरः—पूर्वज
नः—हमारी
अवन्तु—रक्षा करें,
उत—और
देवपुत्रे—दिव्य सन्तान वाले
ऋतावृधा—सत्यधर्मा
देवी—पृथिवी और आकाश (हमारी रक्षा करें)
सुदानवः—हे उत्तम दानी
वसवः—वसुओ !
दुर्गात्—बुरे मार्ग से
रथम्—रथ की
न—भाँति
नः—हमें
विश्वस्मात्—सम्पूर्ण
अंहसः—पाप से
निष्पिपर्तन—निकालकर बचाइये ।

भावार्थ—इस मन्त्र में जिन शक्तियों से रक्षा की प्रार्थना की गई है, उनके विशेषण महत्त्वपूर्ण हैं। उन विशेषणों पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि वैदिक वचन यहाँ सुझाव देना चाहता है कि हमें उन शक्तियों से प्रार्थना करते हुए स्वयं उन गुणों से युक्त होना चाहिये। अतः सर्वप्रथम हम उत्तम उपदेशक हों। उत्तम उपदेशक का यह बड़ा गुण है कि वह उसी बात का उपदेश देता है जिसे वह स्वयं अनुभव करता है, अर्थात् जो करता है वही कहता है। अभिप्राय यह है कि हमारे मन में सच्चाई होनी चाहिये। दूसरे शब्दों में पृथिवी और आकाश के गुण के रूप में इसे ही सत्य धर्म कहा गया है। अन्त में सम्पूर्ण पाप से बचाने के लिये उत्तम दानी वसुओं से प्रार्थना की गई है। सारांश यह कि केवल दान ही एक ऐसा पुण्य है जिसके द्वारा सब पापों से बचा जा सकता है क्योंकि केवलादी होना अर्थात् दान न देकर संग्रह किये जाना बहुत बड़ा पातक है—केवलाघो भवति केवलादी। वसु ईश्वर की सबको बसाने वाली शक्ति है। इसी प्रकार दुःखी सज्जन को शरण देना आर्य का कर्तव्य है। पृथ्वी और आकाश की क्रियाओं में सत्य शाश्वत नियम निरन्तर कार्य करता रहता है। □

स यज्ञस्तस्य यज्ञः।—अथर्व० १३।४।४०

वह परमेश्वर यज्ञरूप है, यह सब उसका यज्ञ है।

१५

स्तुति

शास इत्था महाँ अस्यमित्रखादो अद्भुतः ।
न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदाचन ॥

—ऋ० १०।१५२।१

पदच्छेद—शासः, इत्था, महान्, असि, अमित्रखादः, अद्भुतः, न, यस्य, हन्यते, सखा, न, जीयते, कदाचन ॥

अन्वय तथा पदार्थ

(हे ईश्वर ! आप)
इत्था—इतने
महान्—महान्
अमित्रखादः—शत्रुनाशक
अद्भुतः—अद्वितीय
शासः—शासक
असि—हैं,

यस्य—जिसका
सखा—मित्र
न—न (तो)
हन्यते—मारा जाता है
न—(और) न (ही)
कदाचन—कभी
जीयते—पराजित होता है ।

भावार्थ—ईश्वर का इतना प्रभाव और कृपा है कि उसके मित्र को किसी प्रकार का कष्ट नहीं हो सकता। वह सब प्रकार से सुरक्षित रहता है। उसे कोई भय नहीं। अब प्रश्न यह है कि ईश्वर का मित्र कैसे बना जा सकता है? क्या केवल ईश्वर का गुणगान करने से, उसका कीर्तन करने से ही कोई उसका मित्र हो जाता है? ऐसा नहीं है। ऋग्वेद में ही एक स्थान पर कहा है—इन्द्र इच्चरतः सखा। ईश्वर उसी का मित्र है जो चलता रहे, गतिशील रहे या क्रियाशील रहे। ईश्वर आलसी व्यक्ति का मित्र नहीं हो सकता। अतः ईश्वर का संरक्षण प्राप्त करने के लिए हमें कर्त्तव्य-निष्ठ जीवन व्यतीत करना चाहिए और श्रेष्ठ गुणों को धारण करना चाहिये। यह समझना चाहिये कि ईश्वर ही सबसे बड़ा रक्षक है। □

सहस्रधारे वितते पवित्र आ वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः।

—ऋ० ९।८३।७

क्रान्तिदर्शी मेधावी जन मन रूपी सहस्रों धाराओं वाले छलने में वाणी को छानते हैं अर्थात् सोच-विचार कर वही बोलते हैं जो वे कर सकते हैं या करते हैं।

१६

प्रार्थना

इन्द्र मृड मह्यं जीवातुमिच्छ चोदय धियमयसो न धाराम् ।
यत्किं चाहं त्वायुरिदं वदामि तज्जुषस्व कृधि मा देववन्तम् ।।
—ऋ० ६।४७।१०

पदच्छेद—इन्द्र, मृड, मह्यम्, जीवातुम्, इच्छ, चोदय, धियम्, अयसः, न, धाराम्, यत्, किम्, च, अहम्, त्वायुः, इदम्, वदामि, तत्, जुषस्व, कृधि, मा, देववन्तम् ।।

अन्वय तथा पदार्थ

इन्द्र—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर !
मृड—दया कीजिये
मह्यम्—मेरे लिये
जीवातुम्—जीवन की
इच्छ—इच्छा कीजिये
अयसः—लोहे की
धाराम्—धार के
न—समान
धियम्—बुद्धि को
चोदय—प्रेरित कीजिये ।
च—और
त्वायुः—आपमें लीन
अहम्—मैं
इदम्—यह
यत्—जो
किम्—कुछ
वदामि—कह रहा हूँ
तत्—उसे

जुषस्व—प्रसन्नता से स्वीकार कीजिये। देवत्वम्—दैवी शक्ति से युक्त

कृधि—कीजिये।

मा—मुझे

भावार्थ—इस मन्त्र में जहाँ ईश्वर से दीर्घ जीवन की प्रार्थना की गई है, वहीं लोहे की धार के समान पैनी बुद्धि की कामना भी की है। निस्सन्देह उस दीर्घ जीवन से क्या लाभ जिसमें मनुष्य की विवेक-शक्ति समाप्त हो जाये! उस अवस्था में किसी और का हित करना तो दूर की बात है, उसके लिए आत्महित भी अत्यन्त दुष्कर हो जायेगा। मनुष्यों में बुद्धि ही एकमात्र तत्त्व है, जिसके कारण वे पशुओं से भिन्न हैं। आगे चलकर दैवी शक्ति से युक्त करनें की भी प्रार्थना की गई है। दैवी शक्ति से अभिप्राय है दान-शक्ति, तेजः शक्ति! और इन शक्तियों के मूल में भी बुद्धि ही आधारभूत तत्त्व है। अतः हमें मनुष्यत्व का स्मरण करते हुए विवेक का प्रयोग करना चाहिये। उस विवेक के बिना मनुष्य का दीर्घ जीवन भी निरर्थक हो जाता है। □

स यज्ञस्य शिरस्कृतम्।—अथर्व० १३।४।४०

वह (परमेश्वर) यज्ञ का सिर बनाया गया है अर्थात् उस परमेश्वर को सृष्टिरूपी यज्ञ करने के कारण यज्ञ करने वालों में श्रेष्ठ माना गया है।

१७

स्तुति

सूरो न यस्य दृशतिररेपा भीमा यदेति शुचतस्त आ धीः ।
हेषस्वतः शुरुधो नायमक्तोः कुत्राचिद् रण्वो वसतिर्वनेजाः ॥

—ऋ० ६।३।३

पदच्छेद—सूरः, न, यस्य, दृशतिः, अरेपा, भीमा, यत्, एति, शुचतः, ते, आ, धीः । हेषस्वतः, शुरुधः, न, अयम्, अक्तोः, कुत्रचित्, रण्वः, वसतिः, वनेजाः ।

अन्वय तथा पदार्थ

(हे परमेश्वर !)
हेषस्वतः—(प्रशंसा के) शब्दों वाले
शुरुधः—शोकावरोधक
शुचतः—तेजस्वी
यस्य—जिस
ते—आपकी
सूरः—सूर्य के
न—समान
अरेपा—निर्दोष
भीमा—भयानक
धीः—धारणा शक्ति वाली
दृशतिः—दृष्टि
यत्—जब
आ—सब ओर से
एति—आती है
(तदा)—(तब)
अक्तोः—रात्रि के
न—समान

वनेजाः—वन में होने वाला
अयम्—यह
वसतिः—निवास
कुवचित्—कहीं भी
रण्वः—रमणीय
(भवति)—(हो जाता है।)

भावार्थ—परमेश्वर की दृष्टि का तेज ही ऐसा है जिससे कि अज्ञान का अन्धकार नष्ट हो जाता है और सभी सन्ताप दूर हो जाते हैं। उस समय मनुष्य पूर्ण ज्ञान का लाभ कर लेता है—वस्तुतः परमेश्वर की अनुभूति ही परम ज्ञान है—और तभी उसकी दृष्टि प्राप्त होती है। उस समय मनुष्य में स्वयं ऐसा आत्मविश्वास होता है कि रात्रि जैसे गहन अन्धकार से युक्त वन में भी वह निर्भीक होकर रह सकता है। व्यञ्जना यह है कि जीवन की विषमतम परिस्थितियों में भी आत्मज्ञान के आश्रय से मनुष्य सुख का अनुभव करता है। सुख मन की एक स्थिति है और ईश्वरीय ज्ञान होने पर मनुष्य परम आनन्द का अनुभव करता है। □

तमिन्द्रमभि गायत।—ऋ० ८।३२।१३

उस सबके स्वामी परमेश्वर का ही सब गायन करो।

१८

प्रार्थना

सं पूषन् विदुषा नय यो अञ्जसानुशासति । य एवेदमिति ब्रवत् ॥
—ऋ० ६।५४।१

पदच्छेद—सम्, पूषन्, विदुषा, नय, यः, अञ्जसा, अनुशासति ।
यः, एव, इदम्, इति, ब्रवत् ॥

अन्वय तथा पदार्थ

पूषन्—हे पोषक परमात्मन् !
(तेन)—(उस)
विदुषा—विद्वान् से
सम् नय—संयोग कराइये
यः—जो
अञ्जसा—स्पष्टता से
अनुशासति—उपदेश दे,
यः—जो
इदम्—यह
एव—ही
(तत्त्वम्)—(तत्त्व है—)
इति—इस प्रकार से
ब्रवत्—कहे

भावार्थ—वास्तविक ज्ञान वही गुरु दे सकता है जिसके मन में स्वयं सन्देह न हो। ईश्वर-सम्बन्धी ज्ञान के विषय में तो यह बात और भी आवश्यक है। ईश्वर का कोई एक स्वरूप तो निश्चित है नहीं जिसे प्रत्यक्ष देखा जा सके। अतः उस निर्गुण का ज्ञान कराने के लिए किसी संशयहीन गुरु की प्रार्थना की गई है जो साधक को उचित मार्ग बता सके। □

एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम्।

—ऋ० ८।२४।१९

हे समान विचारों वाले मित्रो, आओ हम स्तुतियोग्य सबके नेता, सबके स्वामी परमेश्वर की स्तुति करें।

१९

स्तुति

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥
—ऋ० १।१६४।४६

पदच्छेद—इन्द्रम्, मित्रम्, वरुणम्, अग्निम्, आहुः, अथ, उ, दिव्यः, सः, सुपर्णः, गरुत्मान् । एकम्, सत्, विप्राः, बहुधा, वदन्ति, अग्निम्, यमम्, मातरिश्वानम्, आहुः ।

अन्वय तथा पदार्थ

एकम्—एक
सत्—सत्य तत्त्व को
विप्राः—मेधावी
बहुधा—विविध प्रकार से
वदन्ति—बताते हैं,
इन्द्रम्—(उसे) इन्द्र
मित्र—मित्र (सूर्य)
वरुणम्—वरुण
अग्निम्—अग्नि
आहुः—कहते हैं ।
अथो—और
सः—वह (ही)
दिव्यः—द्युतिशील
सुपर्णः—सुन्दर गतिवाला
गरुत्मान्—स्तुतियों से युक्त है ।
अग्निम्—(उस) अग्नि (तेजस्वी, सबका नेतृत्व करनेवाले परमेश्वर को)

यमम्—यम (नियन्त्रण करनेवाला)

मातरिश्वानम्—प्राणवायु

आहुः—कहते हैं।

भावार्थ—देवताओं के जितने भिन्न-भिन्न नाम हैं वे सब वस्तुतः एक ही सच्चिदानन्दस्वरूप दैवी शक्ति के विविध रूप हैं। उनमें उसी ईश्वरीय शक्ति का आभास होता है। वह शक्ति सर्वत्र व्याप्त है। भिन्न दिखाई देनेवाले इन रूपों को वास्तव में अपनी सुविधा के लिए मेधावी भिन्न-भिन्न नाम दे देते हैं। अतः हमें यह समझना चाहिए कि इस संसार में व्याप्त और इसका आधार-भूत सत्य तत्त्व एक ही है। वह शोभन गति वाला है क्योंकि विना चले वह सर्वत्र पहुँचा हुआ होता है। □

सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति।

—ऋ० १०।११४।५

मेधावी क्रान्तदर्शी विद्वान् शोभन गति वाले एक होते हुए (परमेश्वर) को अपनी वाणी से बहुत प्रकार से बताते हैं।

२०

प्रार्थना

शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥
—ऋ० ७।३५।१

पदच्छेद—शम्, नः, इन्द्राग्नी, भवताम्, अवोभिः, शम्, नः, इन्द्रावरुणा, रातहव्या। शम्, इन्द्रासोमा, सुविताय, शंयोः, शम्, नः, इन्द्रापूषणा, वाजसातौ ॥

अन्वय तथा पदार्थ

इन्द्राग्नी—इन्द्र और अग्नि (नेतृत्व से युक्त स्वामी)
अवोभिः—रक्षा-कार्यों के द्वारा
नः—हमारे लिए
शम्—शान्तिदायक
भवताम्—हों,
रातहव्या—आहुति से युक्त
इन्द्रावरुणा—इन्द्र और वरुण (नियम से युक्त स्वामी)
नः—हमारे लिए
शम्—शान्तिदायक (हों)।
इन्द्रासोमा—इन्द्र और सोम (चन्द्रमा) (शान्ति से युक्त स्वामी)
सुविताय—अच्छी गति के लिए

शम्—शान्तिदायक हों।
इन्द्रापूषणा—इन्द्र और पूषा (पोषण से युक्त स्वामी)
वाजसातौ—अन्न-प्राप्ति के लिए
नः—हमें
शम्—शान्तिदायक हों।

भावार्थ—सभी दैवी शक्तियों से प्रार्थना की गई है कि हमें शान्ति प्रदान करें। परन्तु उस शान्ति के लिये हमारे अन्दर जो गुण होने चाहिएँ उनकी ओर संकेत भी किया गया है। सर्वप्रथम हममें अपनी रक्षा स्वयं करने का सामर्थ्य होना चाहिए, क्योंकि जब तक आत्म-विश्वास न हो तब तक ईश्वर भी कुछ नहीं कर सकता। हमें आहुति से युक्त अर्थात् दानशील भी होना चाहिए। अच्छी अर्थात् अविचल तथा स्खलन-रहित गति भी शान्ति के लिए आवश्यक है। और अन्त में इस सबका मूल कारण अन्न तो है ही। अन्न से शरीर होता है और शरीर से ही सब कार्य होते हैं। हममें अपनी सबकी आवश्यकता के अनुरूप अन्न उपजाने की क्षमता भी होनी चाहिए।

दूसरी ओर आधिभौतिक अर्थ के अनुसार यहाँ स्वामी अथवा शासक के गुण बताये गये हैं। वह तब तक प्रजा का ठीक-ठीक पालन नहीं कर सकता जब तक उसमें नेतृत्व, नियमपालन, शान्ति और प्रजा-पोषण के गुण न हों। नेतृत्व के गुण से युक्त शासक शत्रुओं को परास्त कर रक्षा-कार्यों के द्वारा प्रजा के लिये शान्ति की व्यवस्था करता है। नियम-पालन के गुण से वह प्रजा को दान-भावना की प्रेरणा देकर, शान्ति अर्थात् विचलित न होने के गुण से सर्वत्र गति प्रदान कर और पोषण की भावना से प्रजा को अन्नादि की प्राप्ति कराकर शान्तिदायक होता है। □

२१

स्तुति

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम् ।
द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः ॥

—अथर्व० ४।१६।२

पदच्छेद—यः, तिष्ठति, चरति, यः, च, वञ्चति, यः, निलायम्, चरति, यः, प्रतङ्कम् । द्वौ, सम् निषद्य, यत्, मन्त्रयेते, राजा, तत्, वेद, वरुणः, तृतीयः ।

अन्वय तथा पदार्थ

यः—जो
तिष्ठति—बैठता है
च—और
यः—जो
चरति—चलता है
यः—जो
वञ्चति—कपट करता है
यः—जो
निलायम्—गुप्त स्थान (के प्रति) में
चरति—चलता है (कार्य करता है)
(यः च)—और जो
प्रतङ्कम्—भयपूर्वक
(चरति)—चलता है (कार्य करता है)
द्वौ—दो (मनुष्य)

संनिषद्य—साथ बैठकर
यत्—जो कुछ
मन्त्रयेते—(गुप्त) मन्त्रणा करते हैं
तत्—उसे
राजा—शासक
वरुणः—सर्वव्यापक परमेश्वर
तृतीयः—तीसरा (होकर)
वेद—जानता है।

भावार्थ—इस संसार की प्रत्येक छोटी से छोटी क्रिया भी ईश्वर के द्वारा संचालित होती है; वह सर्वव्यापी है, अतः उसकी दृष्टि सब ओर सब कालों में रहती है। उससे छिपकर कोई कार्य नहीं हो सकता। इसीलिए जब हम सांसारिक जनों से छिपकर कोई कार्य करते हैं तो भी ईश्वर उसे देखता है और हमें इस लोक में अथवा परलोक में उसका निश्चित फल प्राप्त होता है। अतः प्रत्येक कार्य को करते हुए यह ध्यान रखना चाहिए कि कोई भी कार्य गुप्त नहीं हो सकता—ईश्वर प्रत्येक स्थान पर प्रतिक्षण सब-के-सब कार्य देखता रहता है। सांसारिक दृष्टि से हम भले ही बच जायें परन्तु ईश्वर की दृष्टि से नहीं बचा जा सकता। □

तनूरेव तन्वो अस्तु भेषजम्।—ऋ० १०।१००।१०
शरीर ही शरीर की औषधि हो अर्थात् हम शरीर को इतना स्वस्थ रखें कि उसे औषधि की आवश्यकता न पड़े।

२२

प्रार्थना

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः ।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम् ॥
—ऋ० १।३१।४

पदच्छेद—स्वस्ति, मात्रे, उत, पित्रे, नः, अस्तु, स्वस्ति, गोभ्यः, जगते, पुरुषेभ्यः । विश्वम्, सुभूतम्, सुविदत्रम्, नः, अस्तु, ज्योक्, एव, दृशेम, सूर्यम् ॥

अन्वय तथा पदार्थ

नः—हमारी
मात्रे—माता के लिए
उत—और
पित्रे—पिता के लिए
स्वस्ति—कल्याण
अस्तु—हो ।
गोभ्यः—गौओं के लिए
जगते—जंगम संसार के लिए
पुरुषेभ्यः—सब जनों के लिए
स्वस्ति—कल्याण हो ।

नः—हमारे लिए
विश्वम्—संसार
सुभूतम्—सुन्दर बना हुआ
सुविदत्रम्—शोभन ज्ञान से युक्त
अस्तु—हो ।
ज्योक्—सदा
एव—ही
सूर्यम्—सूर्य को
दृशेम—हम देखते रहें ।

भावार्थ—वैदिक प्रार्थना में पहले सार्वभौम कल्याण की कामना की गई है। परन्तु सार्वभौम कल्याण भी अपने दृष्टिकोण तथा सामर्थ्य के बिना सम्भव नहीं। मनुष्य अपने आसपास के वातावरण का स्वयं निर्माता होता है। अतः यह भी प्रार्थना है कि हमें संसार का उचित ज्ञान हो, जिससे कि हम उसके सौन्दर्य को समझकर उसकी निर्मात्री महाशक्ति की कल्पना कर सकें। अपने आसपास के वातावरण को सुन्दर बनाने के लिए दीर्घ और स्वस्थ जीवन की कामना की गई है। हम सूर्य से दीर्घकाल तक तेजस्वी होकर निरन्तर कल्याण-कार्य करने की प्रेरणा लेते रहें। सूर्य शत्रुविनाशक होने के साथ प्रखर तेजस्विता का, नियमपालन का और आकर्षण-शक्ति का भी प्रतीक है और इन गुणों की प्रेरणा देता रहता है।

□

कश्छन्दसां योगमा वेद धीरः।—ऋ० १०।११४।९

कौन बुद्धिमान् छन्दों (मन्त्रों) के (अर्थ से) सम्बन्ध को पूर्णतया जानता है?

२३

स्तुति

विदा देवा अघानामादित्यासो अपाकृतिम् ।
पक्षा वयो यथोपरि व्यस्मे शर्म यच्छतानेहसो व ऊतयः
सुऊतयो व ऊतयः ॥ —ऋ० ८।४७।२

पदच्छेद—विदा, देवाः, अघानाम्, आदित्यासः, अपाकृतिम् । पक्षा, वयः, यथा, उपरि, वि, अस्मे, शर्म, यच्छत, अनेहसः, वः, ऊतयः, सुऊतयः, वः, ऊतयः ॥

अन्वय तथा पदार्थ

आदित्यासः—हे प्रकाशस्वरूप
देवाः—देवो, विद्वानो
अघानाम्—पापों के
अपाकृतिम्—निवारण को
विदा—आप जानते हैं ।
यथा—जैसे
वयः—पक्षी
उपरि—(अपने शिशुओं के) ऊपर
पक्षा—पंखों को (रखते हैं)
(तथा)—(वैसे)
अस्मे—हमें
शर्म—शरण
वियच्छत—दीजिये ।

वः—आपकी	वः—आपकी
ऊतयः—रक्षायें	ऊतयः—रक्षायें
अनेहसः—उपद्रवरहित (हैं),	सुऊतयः—उत्तम रक्षायें (हैं)।

भावार्थ—जिस प्रकार खग-शावक अपने जन्मदाता के पंखों के नीचे सब ओर से सुरक्षित होकर निश्चिन्तता और सुख का अनुभव करता है, उसी प्रकार परमेश्वर की शरण में पहुँचकर कोई भय नहीं रहता, किसी उपद्रव की आशङ्का नहीं रहती। निश्चिन्तता का वैसा आनन्द और कहाँ ? परन्तु परमेश्वर की शरण प्राप्त करने के लिए पाप का निवारण आवश्यक है, और पाप का निवारण करने में भी परमेश्वर स्वयं सहायक है क्योंकि वह प्रकाशस्वरूप है। पापों को प्रायः अन्धकार में ही अवकाश मिलता है, अर्थात् पाप छिपकर ही हो सकते हैं। यदि सभी कार्य प्रकाश में करें अर्थात् बिना चोरी के करें तो पाप का स्थान ही नहीं रहता। प्रकाश में तो केवल अच्छे कार्य ही किए जा सकते हैं। तभी परमेश्वर की शरण का परम आनन्द प्राप्त हो सकता है।

देव का अर्थ विद्वान् भी है। विद्वान् ज्ञान के प्रकाश से तेजस्वी होते हैं, वे प्रकाशस्वरूप होते हैं। वे उत्तम जीवन का मार्ग बताते हैं, जिसमें पूर्ण सुरक्षा रहती है। □

२४

प्रार्थना

सुगो हि वो अर्यमन् मित्र पन्था अनृक्षरो वरुण साधुरस्ति।
तेनादित्या अधि वोचता नो यच्छता नो दुष्परिहन्तु शर्म ॥

—ऋ० २।२७।६

पदच्छेद—सुगः, हि, वः, अर्यमन्, मित्र, पन्थाः, अनृक्षरः, वरुण, साधुः, अस्ति। तेन, आदित्याः, अधि, वोचत, नः, यच्छत, नः दुष्परिहन्तु, शर्म।

अन्वय तथा पदार्थ

अर्यमन्—हे गतिशील
मित्र—संसार के मित्ररूप
वरुण—सर्वव्यापी परमेश्वर
हि—निश्चय ही
वः—आपका
पन्थाः—मार्ग
सुगः—सुगम
अनृक्षरः—कष्ट से रहित
साधुः—उचित
अस्ति—है।

आदित्याः—हे प्रकाशस्वरूप देवो!
तेन—उस (मार्ग) के द्वारा
नः—हमारे लिए
अधि—अधिकृत
वोचत—उपदेश कीजिए,
नः—हमें
दुष्परिहन्तु—बुराई को दूर रखनेवाली
शर्म—शरण
यच्छत—दीजिये।

भावार्थ—निस्सन्देह, बुराई को दूर रखने वाला मार्ग ही दिव्य मार्ग है। वही मनुष्यमात्र के लिये श्रेयस्कर है। वही मार्ग प्रकाश की ओर ले जाता है और इसीलिए वही कण्टकरहित, सुगम और उचित है क्योंकि उसमें मनुष्य को कोई भय नहीं रह जाता। जब कोई बुराई ही नहीं तो भय किसका ? इसीलिए हे ईश्वर ! हमें उसी मार्ग पर चलने का उपदेश दीजिये। बुराई से रहित मार्ग पर चलने के उपायरूप ईश्वर के विशेषण द्रष्टव्य हैं। उस मार्ग पर चलने के लिए मनुष्य को गतिशील अर्थात् कर्मशील होना चाहिये। उसे सबसे मित्रता का व्यवहार करना चाहिये और अपने सत्कार्यों द्वारा सर्व-व्यापी, यशस्वी तथा तेजस्वी होना चाहिये। □

व्यस्मदेतु दुर्मतिः—ऋ० १०।१३४।५

बुरी बुद्धि हमसे अलग हो जाये।

२५

स्तुति

त्वां दूतमग्ने अमृतं युगे युगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम् ।
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा निषेदिरे ।।

—ऋ० ६।१५।८

पदच्छेद—त्वाम्, दूतम्, अग्ने, अमृतम्, युगे-युगे, हव्यवाहम्, दधिरे, पायुम्, ईड्यम्, देवासः, च, मर्तासः, च, जागृविम्, विभुम्, विश्पतिम्, नमसा, निषेदिरे ।।

अन्वय तथा पदार्थ

अग्ने—हे प्रकाशस्वरूप ईश्वर
देवासः—देवता
च—और
मर्तासः—मनुष्य
युगे युगे—युग-युग में
दूतम्—दूतरूप
अमृतम्—अमरस्वभाव
पायुम्—रक्षक
ईड्यम्—पूजनीय
हव्यवाहम्—आहुति का वहन करनेवाले
त्वाम्—आपको
दधिरे—धारण करते हैं ।
जागृविम्—जागरूक
विभुम्—व्यापक
विश्पतिम्—प्रजापालक
(त्वाम्)—(आपको)
नमसा—नमस्कार के द्वारा
निषेदिरे—प्राप्त होते हैं ।

भावार्थ—ईश्वर को धारण करने का अभिप्राय ईश्वर के गुणों को धारण करना है। मनुष्य ने सदा ही ईश्वर के लिये सर्वोत्कृष्ट गुणों की कल्पना की है, और उन गुणों को अपने जीवन में अपनाकर वह स्वयं भी श्रेष्ठ बनना चाहता है। स्तुति का सर्वप्रमुख मनोवैज्ञानिक प्रयोजन यही है। इससे दूसरा लाभ यह भी होता है कि मनुष्य में आत्म-विश्वास उत्पन्न होता है। सारे नश्वर संसार के पीछे ईश्वर का अमर-तत्त्व रक्षक-शक्ति के रूप में होना वस्तुतः भंगुर प्राणी के लिये बहुत बड़ा प्रेरणा-स्रोत है। ईश्वर का आहुति वहन करनेवाला रूप मनुष्य में यह विश्वास उत्पन्न करता है कि हम अपनी सामर्थ्य के अनुरूप श्रद्धापूर्वक जो कुछ भी उसे अर्पित करेंगे, उसे वह अपनी उदारता के द्वारा स्वीकार कर लेगा। इसके अतिरिक्त वह व्यापक रूप से समस्त जगत् का पालनकर्ता है। उस पालनक्रिया में वह निरन्तर जागरूक रहता है। ईश्वर का यह गुण मनुष्य को भी जागरूक होकर अपने बन्धुओं का पालन करने की प्रेरणा देता है। □

को धिष्ण्यां प्रति वाचं पपाद।—ऋ० १०।११४।६

आधारभूत वेदवाणी तक कौन पहुँच सका है?

२६

प्रार्थना

न दक्षिणा विचिकिते न सव्या न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा ।
पाक्या चिद्वसवो धीर्या चिद्युष्मानीतो अभयं ज्योतिरश्याम् ॥
—ऋ० ३।२७।११

पदच्छेद—न, दक्षिणा, विचिकिते, न, सव्या, न, प्राचीनम्, आदित्याः, न, उत, पश्चा । पाक्या, चित्, वसवः, धीर्या, चित्, युष्मा, अतीतः, अभयम्, ज्योतिः, अश्याम् ।

अन्वय तथा पदार्थ

आदित्याः—हे अखण्ड प्रकाश-स्वरूप परमेश्वर !
(अहम्)—(मैं)
दक्षिणा—दक्षिण दिशा को
न—नहीं
विचिकिते—पहचानता हूँ,
न—न ही
सव्या—वाम (उत्तर) दिशा को
उत—और
न—न ही
पश्चा—पीछे की (पश्चिम) दिशा को
न—न ही
प्राचीनम्—सामने की (पूर्व) दिशा को

वसवः—हे सर्वत्र निवास करनेवाले प्रभो !
(अहम्)—(मैं)
चित्—भी
पाक्या—परिपक्व
धीर्या—धैर्ययुक्त बुद्धि के द्वारा
चित्—भी
युष्मा—आपकी
अतीतः—आज्ञा के पार
अभयम्—भयरहित
ज्योतिः—(ज्ञान के) प्रकाश को
अश्याम्—प्राप्त करूँ ।

भावार्थ—मनुष्य के सम्मुख सदा से सारा विश्व रहा है । वह आँखों से सब-कुछ देखता हुआ भी अन्तर्दृष्टि के बिना तत्त्व नहीं जान पाता । सारी दिशाएँ देखने पर भी उन सबकी समानता की ओर उसकी दृष्टि नहीं जाती । जब तक उसमें विवेक तथा धैर्य उत्पन्न नहीं होता, तब तक वह पशु अथवा यन्त्र के समान होता है । ईश्वर की सत्ता को जाने बिना वह छोटी-छोटी शक्तियों से भी भयभीत होकर अपने आत्मा के स्वर को नहीं पहचानता । इसलिये यहाँ धैर्य तथा विवेक प्रदान करनेवाली परिपक्व बुद्धि की प्रार्थना की गई है जिससे मनुष्य सर्वत्र ईश्वर की सत्ता का अनुभव करता हुआ उसकी आज्ञा का पालन करे, किसी दूसरे से भयभीत न हो और उस अभय की स्थिति में परम आनन्द को प्राप्त करे । □

पुमान् पुमांसं परि पातु विश्वतः—ऋ० ६।७५।१४
मनुष्य सब ओर से मनुष्य की रक्षा करे ।

२७

स्तुति

स्तविष्यामि त्वामहं विश्वस्यामृत भोजन।
अग्ने त्रातारममृतं मियेध्य यजिष्ठं हव्यवाहन॥

—ऋ० १।४४।५

पदच्छेद—स्तविष्यामि, त्वाम्, अहम्, विश्वस्य, अमृत, भोजन, अग्ने, त्रातारम्, अमृतम्, मियेध्य, यजिष्ठम्, हव्यवाहन।

अन्वय तथा पदार्थ

अग्ने—हे प्रकाशक प्रभो !	त्रातारम्—रक्षक,
विश्वस्य—संसार के	अमृतम्—अमर
अमृत—अमर	यजिष्ठम्—सबसे अधिक पूजनीय
भोजन—भोजन (पोषक तत्त्व) !	त्वाम्—आपकी
मियेध्य—हे पूज्य !	स्तविष्यामि—स्तुति करता हूँ।
हव्यवाहन—हे आहुति वहन करनेवाले !	
अहम्—मैं,	

भावार्थ—इस मन्त्र में ईश्वर के दो प्रमुख रूपों की स्तुति की गई है। एक तो उसका दातृ-स्वरूप है क्योंकि उसे समस्त संसार का अमर भोजन अर्थात् पोषक तत्त्व बताया गया है। जिस प्रकार भोजन शरीर-धारण में सहायक होता है—शरीर की आवश्यकताएँ पूरी करता है, उसी प्रकार ईश्वर भी अपनी अनन्त अमर शक्ति से हमारा ही नहीं, संसार के सभी प्राणियों तथा पदार्थों का पोषण करता है। दूसरे यहाँ ईश्वर के रक्षक-स्वरूप को भी ध्यान में रखा गया है। वह सबका पोषक है और इसीलिए अमर रक्षक भी है। सम्भवतया वेद का संकेत है कि हमें भी ईश्वर को प्राप्त करने के लिये उसके इन गुणों को ग्रहण करना चाहिये। □

अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन् दानाय चोदय।—ऋ० ६।५३।३

हे दयालु, पोषक परमेश्वर, आप अवश्य ही देने की इच्छा न करने वाले को दान के लिए प्रेरित कीजिये।

२८

प्रार्थना

भवा नो अग्ने सुमना उपेतौ सखेव सख्ये पितरेव साधुः ।
पुरुद्रुहो हि क्षितयो जनानां प्रति प्रतीचीर्दहतादरातीः ॥

ऋ० ३।१८।१

पदच्छेदः—भव, नः, अग्ने, सुमनाः, उपेतौ, सखा, इव, सख्ये, पितः, एव, साधुः, पुरुद्रुहः, हि, क्षितयः, जनानाम्, प्रति, प्रतीचीः, दहतात्, अरातीः ।

अन्वय तथा पदार्थ

अग्ने—हे प्रकाशक प्रभो !
पितः—हे पिता !
इव—जिस प्रकार
सखा—मित्र
सख्ये—मित्र के लिये
साधुः—सज्जन
एव—ही
(भवति)—होता है (उसी प्रकार आप)
नः—हमारी
उपेतौ—पहुंच के विषय में
सुमनाः—शोभन मन वाले
भव—हो जाइये
हि—क्योंकि
जनानाम्—लोगों के
क्षितयः—निवासस्थान
पुरुद्रुहः—बहुत वैरी
(भवन्ति)—होते हैं,

भावार्थ—इस मन्त्र में ईश्वर के दो प्रमुख रूपों की स्तुति की गई है। एक तो उसका दातृ-स्वरूप है क्योंकि उसे समस्त संसार का अमर भोजन अर्थात् पोषक तत्त्व बताया गया है। जिस प्रकार भोजन शरीर-धारण में सहायक होता है—शरीर की आवश्यकताएँ पूरी करता है, उसी प्रकार ईश्वर भी अपनी अनन्त अमर शक्ति से हमारा ही नहीं, संसार के सभी प्राणियों तथा पदार्थों का पोषण करता है। दूसरे यहाँ ईश्वर के रक्षक-स्वरूप को भी ध्यान में रखा गया है। वह सबका पोषक है और इसीलिए अमर रक्षक भी है। सम्भवतया वेद का संकेत है कि हमें भी ईश्वर को प्राप्त करने के लिये उसके इन गुणों को ग्रहण करना चाहिये। □

अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन् दानाय चोदय।—ऋ० ६।५३।३

हे दयालु, पोषक परमेश्वर, आप अवश्य ही देने की इच्छा न करने वाले को दान के लिए प्रेरित कीजिये।

२८

प्रार्थना

भवा नो अग्ने सुमना उपेतौ सखेव सख्ये पितरेव साधुः ।
पुरुद्रुहो हि क्षितयो जनानां प्रति प्रतीचीर्दहतादरातीः ॥

ऋ० ३।१८।१

पदच्छेदः—भव, नः, अग्ने, सुमनाः, उपेतौ, सखा, इव, सख्ये, पितः, एव, साधुः, पुरुद्रुहः, हि, क्षितयः, जनानाम्, प्रति, प्रतीचीः, दहतात्, अरातीः ।

अन्वय तथा पदार्थ

अग्ने—हे प्रकाशक प्रभो !
पितः—हे पिता !
इव—जिस प्रकार
सखा—मित्र
सख्ये—मित्र के लिये
साधुः—सज्जन
एव—ही
(भवति)—होता है (उसी प्रकार आप)
नः—हमारी
उपेतौ—पहुँच के विषय में
सुमनाः—शोभन मन वाले
भव—हो जाइये
हि—क्योंकि
जनानाम्—लोगों के
क्षितयः—निवासस्थान
पुरुद्रुहः—बहुत वैरी
(भवन्ति)—होते हैं,

(अत:)—(इसलिये)

प्रतीची:—प्रतिकूल,

अराती:—दान न देने की प्रवृत्ति को

प्रतिदहतात्—नष्ट कर दीजिये।

भावार्थ—यहाँ ईश्वर से सखाभाव में प्रार्थना की गई है। जिस प्रकार मित्र के पास जाते हुए मनुष्य को किसी भय की अनुभूति नहीं होती, उसी प्रकार ईश्वर से अभय दान की प्रार्थना की गई है। ईश्वर सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान् है, अत: उससे बढ़कर किसी भय की कल्पना नहीं की जा सकती। यदि उससे अभय प्राप्त हो जाये तो मनुष्य के लिये किसी का भय नहीं रहता। ईश्वर से अभय प्राप्त करने का वहुत बड़ा उपाय दान की भावना है। कारण यह है कि दान-भावना के आधार पर ही ईश्वर द्वारा यह सारा ब्रह्माण्ड संचालित होता है। प्राय: यह प्रवृत्ति है कि यदि एक ही स्थान पर कुछ लोग रहते हों तो वे एक-दूसरे के वैरी हो जाते हैं, क्योंकि सब एक-दूसरे से अपने लिये कुछ न कुछ प्राप्त करना चाहते हैं, परन्तु किसी की सहायतार्थ कुछ दान नहीं करना चाहते। इसीलिये ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि सुखी तथा शान्त जीवन के लिये वह इस प्रकार की प्रवृत्ति का नाश कर दे। समाज में दान-भावना जितनी अधिक होगी, उतना ही समाज सुख और शान्ति की ओर अग्रसर होगा। □

त्वं विश्वस्य धनदा असि।—ऋ० ७।३२।१७

हे ईश्वर, आप सारे संसार के धनदाता हैं अर्थात् सभी पदार्थ देने वाले हैं।

२९

स्तुति

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥
—यजु० ३१।१९

पदच्छेद—प्रजापतिः, चरति, गर्भे, अन्तः, अजायमानः, बहुधा, विजायते। तस्य, योनिम्, परिपश्यन्ति, धीराः, तस्मिन्, ह, तस्थुः, भुवनानि, विश्वा।

अन्वय तथा पदार्थ

प्रजापतिः—संसार-पालक परमेश्वर
गर्भे—प्रत्येक पदार्थ के गर्भ में
अन्तः—उसके मध्य
चरति—गतिशील रहते हैं,
अजायमानः—स्वयं जन्म न लेते हुए (भी वे)
बहुधा—बहुत प्रकार से
विजायते—प्रकट होते हैं।
धीराः—बुद्धिमान्
तस्य—उन (परमेश्वर) के
योनिम्—स्रोत को
परिपश्यन्ति—देखते हैं अर्थात् जानते हैं
ह—अति प्राचीन काल से
विश्वा—सब
भुवनानि—लोक
तस्मिन्—उन पर
तस्थुः—स्थित अर्थात् आश्रित हैं।

भावार्थ—परमेश्वर सर्वान्तर्यामी तथा सर्वव्यापी है। प्रत्येक पदार्थ की जीवनी शक्ति वही है। उसी से सब-कुछ गतिशील रहता है। इस लोक का ही नहीं, ब्रह्माण्ड के सभी लोकों का सञ्चालन ईश्वर के द्वारा होता है। इतना अधिक प्रभुत्व होते हुए भी वह अजन्मा है। मूढ़ व्यक्ति तो ईश्वर की यह सत्ता स्वीकार नहीं करते, परन्तु बुद्धिमान् व्यक्ति यह जानते तथा अनुभव करते हैं कि वही सकल ब्रह्माण्ड का एकमात्र स्रोत है और स्वयं उसका कोई भी स्रोत नहीं है। □

पणेश्चिद् वि म्रदा मनः।—ऋ० ६।५३।३

हे परमेश्वर, आप कंजूस व्यापारी के मन को भी कोमल बना दीजिये।

३०

प्रार्थना

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददता ऽघ्नता जानता संगमेमहि ।।

—ऋ० ५।५१।१५

पदच्छेद—स्वस्ति, पन्थाम, अनुचरेम, सूर्याचन्द्रमसौ, इव । पुनः, ददता, अघ्नता, जानता, संगमेमहि ।।

अन्वय तथा पदार्थ

सूर्याचन्द्रमसौ—सूर्य और चन्द्रमा
इव—के समान
(वयम्)—(हम)
स्वस्ति—कल्याणकर
पन्थाम्—मार्ग का
अनुचरेम—अनुसरण करें ।

पुनः—बार-बार
ददता—दानशील से
अघ्नता—अहिंसक से
जानता—ज्ञानी से
संगमेमहि—संयोग प्राप्त करें ।

भावार्थ—ईश्वर की महान् शक्तियाँ सदा कल्याणकार्यों में ही उद्यत रहती हैं और उनकी इस वृत्ति से मनुष्य को भी परोपकार का पाठ सीखना चाहिए। इसीलिए इस मन्त्र में सूर्य और चन्द्रमा का उदाहरण देकर यह प्रार्थना की गई है कि जिस प्रकार ये दोनों प्राणिमात्र का कल्याण करने में प्रतिक्षण प्रवृत्त होते हैं—सूर्य प्रकाश देता है, समुद्र से वाष्प बनाकर वृष्टि उत्पन्न करता है, कीटाणुओं का नाश करता है इत्यादि, और चन्द्रमा ओषधि-वनस्पतियों में रस का संचार करता है, शीतलता प्रदान करता है इत्यादि—उसी प्रकार हम भी जनकल्याण के कार्यों में प्रवृत्त हों। दानशील, अहिंसक भावों वाले तथा ज्ञानी जनों से हमारा संयोग हो, जिससे हम उनसे उत्तम गुण ग्रहण करें। सूर्य और चन्द्रमा नियमपूर्वक कार्य के प्रतीक हैं। उनके इस नियम के आधार पर ही काल को मापा जाता है—इसी आधार पर सैंकड़ों क्या सहस्रों वर्षों की गणना मनुष्य कर लेता है। ये दोनों क्रमशः प्रखरता और शान्ति या शीतलता के प्रतीक भी हैं। भावना यह है कि मनुष्य में इन दोनों का समन्वय होना चाहिये। शत्रुओं और कठिनाइयों से जूझने के लिये प्रखरता आवश्यक है। दूसरी ओर सज्जनों और दीन-दुःखियों के लिये शीतल-शान्त व्यवहार अपेक्षित है। □

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्—यजु० ४०।१६

हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर, आप हमें धन के लिये शुभ मार्ग से ले जाइये।

३१

स्तुति

त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः। सखा सखिभ्य ईड्यः ॥

—ऋ० १।७५।४

पदच्छेद—त्वम्, जामिः, जनानाम्, अग्ने, मित्रः, असि, प्रियः। सखा, सखिभ्यः, ईड्यः ॥

अन्वय तथा पदार्थ

अग्ने—हे सर्वप्रकाशक प्रभो !

त्वम्—आप

जनानाम्—जनों के

जामिः—निकट सम्बन्धी,

प्रियः—प्रिय

मित्रः—मित्र

असि—हैं।

(त्वम्)—(आप)

सखिभ्यः—सखाओं के लिये

ईड्यः—पूजनीय

सखा—मित्र (हैं)।

भावार्थ—ईश्वर का सम्बन्ध सब जनों के साथ इष्टसम्बन्धी तथा हितैषी मित्र जैसा है। जिस प्रकार कोई सम्बन्धी निकट होकर सुख-दुःख आदि में सम्मिलित होता है तथा मित्र अपने मित्र के लिये कुछ भी बलिदान करनें को तैयार हो जाता है, उसी प्रकार ईश्वर सब प्रकार से सांसारिक जनों की सहायता करता है। वह सुख-दुःख में साथ है—केवल उसे अनुभव करनें की आवश्यकता है। और जो व्यक्ति उसका अनुभव करने लग जाये तो उसे न तो कहीं से भय होगा और न ही कोई दुःख। ईश्वर समान बातचीत वाला सखा है। जिस प्रकार सखा परस्पर भेद खोल देते हैं उसी प्रकार ईश्वर का अनुभव होनें पर उसके साथ मानो बातचीत होती है, सब भेंद खल जाते हैं। □

युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनः।—यजु० ४०।१६
हे परमेश्वर, कुटिलतायुक्त पाप-कर्म को हमसे अलग कर दीजिये।

३२

प्रार्थना

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ।
इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि ॥ —यजु० १।५

पदच्छेद—अग्ने, व्रतपते, व्रतम्, चरिष्यामि, तत्, शकेयम्, तत्, मे, राध्यताम् । इदम्, अहम्, अनृतात्, सत्यम्, उपैमि ।

अन्वय तथा पदार्थ

व्रतपते—हे नियमपालक
अग्ने—प्रकाशस्वरूप प्रभो !
व्रतम्—नियम पर
चरिष्यामि—(मैं) आचरण करूँगा,
तत्—वह
शकेयम्—(मैं) कर सकूँ,
मे—मेरे लिए
तत्—वह
राध्यताम्—सिद्ध या सफल हो ।
इदम्—यह
अहम्—मैं
अनृतात्—असत्य से
सत्यम्—सत्य को
उपैमि—प्राप्त होता हूँ ।

भावार्थ—प्रकृति तथा समाज के नियमों पर आचरण का मार्ग ही सत्यमार्ग है। उसी से कल्याण होता है। यहाँ ईश्वर को नियम-पालक कहने का विशेष उद्देश्य यह है कि उसके माध्यम से प्रकृति के नियमों की पूर्णता की ओर संकेत किया गया है। उन नियमों में न तो कोई बाधक हो सकता है और न ही कोई उनमें कमी निकाल सकता है। जिस प्रकार ये नियम अटल हैं उसी प्रकार मनुष्य को भी सत्य, दानादि के नियमों पर अटल रहना चाहिये। असत्य को छोड़कर सत्य का आचरण करना ही ईश्वरोपासना की पहली सीढ़ी है। यही यज्ञमय जीवन की दीक्षा है। वास्तविक सत्य वही है जिसमें लोक-हित की भावना निहित हो। सत्य वह है जिसमें वही कहा तथा किया जाये जो मन में हो और वही मन में हो जो प्रकट रूप में कहा या किया जाये, अर्थात् छल-कपट, गोपन न हो—वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितम् अर्थात् मेरी वाणी मन में प्रतिष्ठित हो और मेरा मन वाणी पर आधारित हो। □

ऋतस्य पन्थामन्वेति साधुः—ऋ० १।१२४।३

सज्जन चिरन्तन सत्य के मार्ग पर चलता है।

३३

स्तुति

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

—अथर्व० १०।८।१

पदच्छेद—यः, भूतम्, च, भव्यम्, च, सर्वम्, यः, च, अधितिष्ठति । स्वः, यस्य, च, केवलम्, तस्मै, ज्येष्ठाय, ब्रह्मणे, नमः ।

अन्वय तथा पदार्थ

यः—जो
भूतम्—भूतकाल का
च—और
भव्यम्—भविष्यत्काल का
च—और
यः—जो
सर्वम्—सबका
अधितिष्ठति—अधिष्ठाता है,
च—और
यस्य—जिसका
स्वः—प्रकाश, आनन्द
केवलम्—एकमात्र शुद्ध (रूप है)
तस्मै—उस
ज्येष्ठाय—सबसे महान्
ब्रह्मणे—ब्रह्म को
नमः—प्रणाम है ।

भावार्थ—परमेश्वर काल का अधिष्ठाता है। कालचक्र उसी के निर्देशन में चलता है। क्योंकि सभी सांसारिक पदार्थ काल-सापेक्ष हैं, अतः उन सबका अधिष्ठाता भी परमेश्वर है। उसका कोई रूप-रंग-युक्त आकार नहीं है। यदि उसे किसी भी आकार में बद्ध समझा जाये, तो वह प्रमाद है। वह तो असीम है। उसका शुद्ध रूप तो परम आनन्द है। वेद में उस निराकार आनन्दरूप परमात्मा को ही उपासना का विषय माना गया है। □

असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु।—अथर्व० १९।१४।१

प्रमुख दिशायें मेरे लिये शत्रुतारहित हों।

३४

प्रार्थना

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥ —ऋ० ८।९८।११

पदच्छेद—त्वम्, हि, नः, पिता, वसो, त्वम्, माता, शतक्रतो, बभूविथ । अधा, ते, सुम्नम्, ईमहे ॥

अन्वय तथा पदार्थ

वसो—हे निवास (रूप) !
शतक्रतो—हे शतों क्रियाओं वाले !
हि—क्योंकि
त्वम्—आप
नः—हमारे
पिता—पिता (पालक),
त्वम्—आप
माता—माता (जन्मदाता)
बभूविथ—हैं,
अधा—अतः
ते—आपके
सुम्नम्—सौमनस्य (सुख) को
ईमहे—हम प्राप्त करते हैं ।

भावार्थ—परमेश्वर अपनी अनन्त क्रियाओं के द्वारा हमारा जन्मदाता और पालनकर्ता है। उसके इस गुण से हमें भी प्रेरणा मिलती है कि हम भी सुख प्राप्त करने के लिये आलस्य में न पड़े रहें, अपितु वास्तविक सुख के लिये विभिन्न क्रियाएँ करते रहें। वे क्रियाएँ सुख का हेतु हों—सबके लिये। वह सुख भी सामान्य भौतिक सुख नहीं है। यहाँ वह सुख अभिलषित है जिसमें मन को शान्ति मिले। हम जानते हैं कि भौतिक दृष्टि से सुखी व्यक्ति भी मन से दुःख का अनुभव करता है। अतः वास्तविक सुख मानसिक सुख ही है। परमेश्वर ही हमारा माता और पिता है। वह माता के समान ममतापूर्ण भी है और पिता के समान नियन्त्रण करनेवाला भी है। इसी कारण किसी अन्य सांसारिक व्यक्ति से (चाहे वह कितना बड़ा क्यों न हो) सुख की कामना करने का उतना लाभ नहीं, जितना उस परमेश्वर से। □

दिवमारुहत् तपसा तपस्वी।—अथर्व० १३।२।२५
तपस्वी व्यक्ति तपस्या के द्वारा (ज्ञान के) प्रकाश का आरोहण करता है।

३५

स्तुति

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥
—ऋ० १।८९।१०

पदच्छेद—अदितिः, द्यौः, अदितिः, अन्तरिक्षम्, अदितिः, माता, सः, पिता, सः, पुत्रः । विश्वे, देवाः, अदितिः, पञ्च, जनाः, अदितिः, जातम्, अदितिः, जनित्वम् ॥

अन्वय तथा पदार्थ

अदितिः—अखण्ड परमेश्वर
द्यौः (अस्ति)—आकाश (है)
अदितिः—अखण्ड परमेश्वर
अन्तरिक्षम्—अन्तरिक्ष (है),
अदितिः—अखण्ड परमेश्वर
माता—माता (है),
सः—वह (परमेश्वर)
पिता—पिता (है),

सः—वह (परमेश्वर)
पुत्रः—पुत्र (भी है) ।
(अदितिः)—(अखण्ड परमेश्वर)
विश्वे देवाः—सभी देवता (हैं),
अदितिः—अखण्ड परमेश्वर
पञ्च जनाः—पाँचों जन अर्थात् सभी दिशाओं के लोग (हैं),

अदितिः—अखण्ड परमेश्वर

जातम्—जो कुछ उत्पन्न हुआ, वह सब (है),

जनित्वम्—(और वही) जो कुछ उत्पन्न होगा, वह सब (है)।

भावार्थ—परमेश्वर अखण्ड है, उसके विभाजन नहीं हो सकते। न ही उसके विषय में यह कहा जा सकता है कि वह अमुक पदार्थ में है, अमुक में नहीं, या अमुक स्थान अथवा काल में है और अमुक स्थान अथवा काल में नहीं। वह अन्तर्यामी है, सर्वव्यापी है और त्रिकालातीत है। सबको जन्म देनेवाला भी वही है और इसीलिए जो कुछ जन्म लेता है या लेगा, उसमें वह विद्यमान है तथा होगा। बड़ी से बड़ी शक्तियाँ (देवता) भी उस परमेश्वर के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। पारमार्थिक दृष्टि से परमेश्वर का स्वरूप यही है। इन शक्तियों से रहित और किसी भी तत्त्व को हम परमेश्वर नहीं मान सकते। पृथिवी की पाँच दिशाओं (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण एवं मध्य-दिशा) के जितने भी मनुष्य हैं वे सब ईश्वररूप हैं—उनमें परस्पर कोई भेद नहीं है। □

न स सखा यो न ददाति सख्ये।—ऋ० १०।११७।४

वह मित्र नहीं है जो (आवश्यकता पड़ने पर) मित्र को नहीं देता।

३६

प्रार्थना

शन्नः सूर्यं उरुचक्षा उदेतु शन्नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु।
शन्नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शन्नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥

—ऋ० ७।३५।८

पदच्छेद—शम्, नः, सूर्यः, उरुचक्षाः, उदेतु, शम्, नः, चतस्रः, प्रदिशः, भवन्तु। शम्, नः, पर्वताः, ध्रुवयः, भवन्तु, शम्, नः, सिन्धवः, शम्, उ, सन्तु, आपः।

अन्वय तथा पदार्थ

उरुचक्षाः—विस्तृत दृष्टि वाला
सूर्यः—सूर्य
शम्—शान्तिपूर्वक
उदेतु—उदय हो,
चतस्रः—चार
प्रदिशः—प्रमुख दिशाएँ
नः—हमारे लिये
शम्—शान्तिप्रद
भवन्तु—हों,
ध्रुवयः—स्थिर, दृढ़
पर्वताः—पर्वत
नः—हमारे लिये
शम्—शान्तिप्रद
भवन्तु—हों,
सिन्धवः—नदियाँ
नः—हमारे लिये

शम्—शान्तिप्रद हो, | नः—हमारे लिये
उ—और | शम्—शान्तिप्रद
आपः—अन्य स्रोतों से प्राप्त जल | सन्तु—हों।

भावार्थ—सब ओर से सभी महान् शक्तियों से शान्ति की कामना की गई है। मनुष्य जीवन-भर शान्ति की प्राप्ति के लिये विभिन्न कार्य करता रहता है। शारीरिक स्वास्थ्य यद्यपि शान्ति का आधार है, तथापि बहुधा शारीरिक सुख-स्वास्थ्य होने पर भी चित्त अशान्त रहता है। शान्ति बाहर से नहीं आती, प्राणी के अन्तर में ही उपजती है। इसीलिये प्रार्थना है कि उपर्युक्त शक्तियों के व्यवहार में हमारा चित्त शान्त हो, हम उद्विग्न न हों। मन में शान्ति होने से मनुष्य सभी परिस्थितियों में शान्त रह सकता है। □

तस्मिन् श्रयन्ते य उ के च देवा
वृक्षस्य स्कन्धः परित इव शाखाः।—अथर्व० १०।७।३८

उस (प्रजापति) पर जो कोई भी दिव्य शक्तियाँ हैं, वे उसी प्रकार आश्रित हैं जैसे वृक्ष की शाखायें उसके तने पर आश्रित होती हैं।

३७

स्तुति

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्
व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ।।—यजु० ४०।८

पदच्छेद—सः, पर्यगात्, शुक्रम्, अकायम्, अव्रणम्, अस्नाविरम्, शुद्धम्, अपापविद्धम्, कविः, मनीषी, परिभूः, स्वयम्भूः, याथातथ्यतः, अर्थान्, व्यदधात्, शाश्वतीभ्यः, समाभ्यः ।।

अन्वय तथा पदार्थ

सः—वह (परमात्मा)
पर्यगात्—सब ओर व्याप्त है ।
(तत् तत्त्वम्)—(वह परम तत्त्व)
शुक्रम्—उज्ज्वल,
अकायम्—शरीररहित
अव्रणम्—क्षतिरहित,
अस्नाविरम्—स्नायुरहित,
शुद्धम्—पवित्र,
अपापविद्धम्—पाप या दोष से अस्पृष्ट (है) ।

कविः—क्रान्तदर्शी,
मनीषी—मेधावी
परिभूः—सर्वव्यापी
स्वयंभूः—स्वयं जन्मे (उस ईश्वर) ने
शाश्वतीभ्यः—अनन्त
समाभ्यः—वर्षों के लिये
अर्थान्—पदार्थों को
याथातथ्यतः—उचित रूप में
व्यदधात—बना दिया है ।

भावार्थ—ईश्वर अनादि-अनन्त है। वह सर्वथा पूर्ण है। वह पूर्ण शुद्ध है। उसे कभी किसी प्रकार की कोई क्षति नहीं होती क्योंकि क्षति तो स्थूल शरीर की ही होती है, और वह अशरीर है। दूसरे शब्दों में शारीरिक, भौतिक बन्धनों से वह ऊपर है। इसी प्रकार शरीर के भीतर स्नायुओं से जो दोष हो सकते हैं, वे भी उसे नहीं होते क्योंकि वह स्नायुरहित भी है। उसकी दृष्टि इतनी व्यापक है कि वह काल और स्थान की सीमाओं का अतिक्रमण करके सब-कुछ कर लेता है। इसीलिये उसने आश्चर्यजनक रूप में इस संसार के विभिन्न पदार्थों और उनकी क्रियाओं का इस प्रकार विधान किया है कि अनन्त काल तक उनमें कहीं किसी संशोधन की आवश्यकता नहीं। वह ईश्वर हम सब के द्वारा मान्य है, अन्य कोई शक्ति नहीं। □

स्कम्भ इदं विश्वं भुवनमा विवेश।—अथर्व० १०।७।३५

विश्व का आधार परमेश्वर इस सारे संसार में प्रविष्ट है।

३८

प्रार्थना

अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपाराति दुर्विदत्रामघायतः ।
आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरु णः शर्म यच्छता स्वस्तये ।।
ऋ० १०।६३।१२

पदच्छेद—अप, अमीवाम्, अप, विश्वाम्, अनाहुतिम्, अप, अरातिम्, दुर्विदत्राम्, अघायतः, आरे, देवाः, द्वेषः, अस्मत्, युयोतन, उरु, नः, शर्म, यच्छत, स्वस्तये ।

अन्वय तथा पदार्थ

देवाः—हे दिव्य शक्तियो ! अथवा विद्वानो
अस्मत्—हमसे
अमीवाम्—रोग को
अप—पृथक् कर दो,
विश्वाम्—सभी
अनाहुतिम्—परस्पर न बुलाने की भावना को
अप—पृथक् कर दो,
अघायतः—पापाचरण करनेवाले की
दुर्विदत्राम्—दुर्बुद्धि से युक्त
अरातिम्—दानहीनता या शत्रुता को
अप—पृथक् कर दो,
द्वेषः—विद्वेष-भावना को

अारे—दूर उरु—विस्तृत

युयोतन—पृथक् कर दो। शर्म—शरण

स्वस्तये—कल्याण के लिये यच्छत—प्रदान करो।

नः—हमें

भावार्थ—हमारा जीवन सर्वव्यापी तथा सर्वान्तर्यामी ईश्वर की दिव्य शक्तियों के नियन्त्रण में रहता है। अतः प्रकृति के विभिन्न अङ्गों से रोगों आदि को दूर करने की प्रार्थना की गई है। देव विद्वान् भी हैं। वे भी अपने सदुपदेशों से सबके कष्ट दूर करते हैं। इसके अतिरिक्त मनुष्य में परस्पर सौहार्द बना रहे—इसकी भी प्रार्थना है क्योंकि उस सौहार्द के बिना भौतिक समृद्धि होने पर भी सुख-शान्ति का अभाव रहता है। इसके लिये विद्वेष और दानहीनता की भावना या अहङ्कार का त्याग अत्यन्त आवश्यक है। अहङ्कार ही वैमनस्य और कलह का कारण है। उसे त्यागकर ही मनुष्य-मात्र का कल्याण सम्भव है। ईश्वर की शरण का सुख प्राप्त करने के लिये संकुचित वृत्तियों का त्याग करके उदार ईश्वरीय आचरण ग्रहण करना आवश्यक है। अतः यहाँ प्रार्थना की गई है कि अहंकार आदि की संकुचित वृत्तियाँ हमसे दूर रहें। □

३९

स्तुति

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥
—श्वेताश्वतर० ३।१९

पदच्छेद—अपाणिपादः, जवनः, ग्रहीता, पश्यति, अचक्षुः, सः, शृणोति, अकर्णः, सः, वेत्ति, वेद्यम्, न, च, तस्य, अस्ति, वेत्ता, तम्, आहुः, अग्र्यम्, पुरुषम्, महान्तम् ।

अन्वय तथा पदार्थ

अपाणिपादः—बिना हाथ-पाँव के
जवनः—तीव्र गति वाला (और)
ग्रहीता—ग्रहणशक्ति वाला
सः—वह (परमेश्वर)
अचक्षुः—बिना नेत्रों वाला
पश्यति—देखता है, (और)
अकर्णः—कानरहित
शृणोति—सुनता है ।

सः—वह
वेद्यम्—जानने योग्य को
वेत्ति—जानता है ।
च—और
तस्य—उसका
वेत्ता—जानने वाला
न—नहीं
अस्ति—है ।

तम्—उसे महान्तम्—महान्
अग्र्यम्—सर्वप्रधान पुरुषम्—पुरुष
आहुः—कहते हैं।

भावार्थ—ईश्वर की कल्पना साधारण सीमित मनुष्य के रूप में नहीं की जा सकती। वह असीम है। जिस प्रकार मनुष्यों के हाथ-पाँव होते हैं, उस प्रकार उसके नहीं होते, परन्तु फिर भी उसकी गति अत्यन्त तीव्र है और सब-कुछ ग्रहण करने की उसमें शक्ति है। वह भौतिक सीमाओं से इतना परे है कि आँख-कान न होने पर भी सब-कुछ देखता और सुनता है। उससे संसार की कोई गतिविधि छिपी हुई नहीं है। जो भी जानने योग्य ज्ञान हो सकता है, वह सब उसे ज्ञात है। वस्तुतः वही एकमात्र ज्ञातव्य है। और वह इतना असीम, अपरिमित है कि उसे सामान्य भौतिक रूप में जाना नहीं जा सकता। इसीलिये ईश्वर को ज्ञानी व्यक्ति सबसे प्रधान, सबसे महान् आदि पुरुष मानते हैं। उसी के नियन्त्रण में सारा संसार है।

□

वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम।

—अथर्व० ७।८३।२

हे प्रकाशरूप अखण्ड परमेश्वर हम निरपराध (होकर) पूर्णता के लिये आपके नियम में रहें।

४०

प्रार्थना

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥
—यजु० ३४।१

पदच्छेद—यत्, जाग्रतः, दूरम्, उदैति, दैवम्, तत्, उ, सुप्तस्य, तथा, एव, एति, दूरङ्गमम्, ज्योतिषाम्, ज्योतिः, एकम्, तत्, मे, मनः, शिवसङ्कल्पम् अस्तु ॥

अन्वय तथा पदार्थ

यत्—जो
दैवम्—दिव्य (मन)
जाग्रतः—पुरुष के जागते होने पर
दूरम्—दूर
उदैति—चला जाता है,
तत्—वह
उ—ही

सुप्तस्य—पुरुष के सोते होने पर
तथा—उस प्रकार
एव—ही
एति—(दूर) चला जाता है।
दूरङ्गमम्—बहुत दूर चला जाने वाला
ज्योतिषाम्—विभिन्न ग्रह-नक्षत्रों का

एकम्—एकमात्र
ज्योति:—प्रकाश
तत्—वह
मे—मेरा
मन:—मन
शिवसङ्कल्पम्—शुभ विचारों वाला
अस्तु—हो।

भावार्थ—इस संसार में मन बहुत बड़ी शक्ति है। मन की शक्ति से ही मनुष्य बड़े-बड़े असाध्य कार्य करने में भी समर्थ हो जाता है। यह मन मनुष्य के सोते रहने पर भी क्रियाशील रहता है। इसीलिये इसे बहुत बड़ा प्रकाश बताया गया है। मनुष्य-जीवन की उत्कृष्टता के लिये मन पर नियन्त्रण तथा मन की शुद्धि अत्यन्त आवश्यक है। इसीलिये इस मन्त्र में प्रार्थना की गई है कि मेरा मन सदा शुभ विचारों वाला हो। इसमें सदा परोपकार, दया, अपरिग्रह आदि के शुभ विचार ही रहें जिससे समृद्ध, सुखी और परस्पर-सहयोग-पूर्ण समाज की रचना हो सके। □

केतपूः केतं नः पुनातु।—यजु० ११।७
ज्ञान से पवित्र करने वाला परमेश्वर हमारे ज्ञान को पवित्र करे।

४१
स्तुति

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥
—ऋ० १।११५।१

पदच्छेद—चित्रम्, देवानाम्, उद्, अगात्, अनीकम्, चक्षुः, मित्रस्य, वरुणस्य, अग्नेः, आ, अप्राः, द्यावापृथिवी, अन्तरिक्षम्, सूर्यः, आत्मा, जगतः, तस्थुषः, च ।

अन्वय तथा पदार्थ

देवानाम्—दिव्य प्राकृतिक शक्तियों का
चित्रम्—अद्भुत, पूजनीय
अनीकम्—मुख, प्राणदाता,
मित्रस्य—मित्र के समान सहायक, उदयोन्मुख सूर्य का,
वरुणस्य—व्यापक जल का
अग्नेः—भौतिक अग्नि का
चक्षुः—नेत्र (सूर्य)
उद् अगात्—उदय हुआ है ।
द्यावापृथिवी—पृथिवी और आकाश को,
अन्तरिक्षम्—(तथा) अन्तरिक्ष को (उसने उदय होते ही)
आ—सब ओर से

अप्राः—पूर्ण कर दिया है।   च—और
सूर्यः—(वह) सूर्य   तस्थुषः—स्थिर संसार का
जगतः—चलने-फिरने वाले संसार का   आत्मा—आत्मा (है)।

भावार्थ—परमेश्वर की व्यापक अपार शक्ति का सर्वोत्तम प्रतीक सूर्य है। सूर्य प्राकृतिक शक्तियों और उनकी क्रियाओं का मुख्य नियन्ता है। सूर्य की ऊष्मा पर वायु का दबाव और उसका एक दिशा से दूसरी दिशा को चलना निर्भर है। वाष्पीकरण द्वारा सूर्य ही जल को अन्तरिक्ष में व्याप्त करने और वर्षा में सहायक है। सूर्योदय से पूर्व विचित्र तथा विविध रंग बदलते हुए आकाश की स्थितियाँ सूर्य के कारण होती हैं। अद्भुत है उसकी शक्ति और इसीलिये वह सर्वाधिक पूजनीय है। इसी कारण उसे प्राकृतिक शक्तियों का प्राणदाता तथा मार्गदर्शक नेत्र बताया गया है। वह अकेला पृथिवी, आकाश, अन्तरिक्ष को अपने प्रकाश से भर देता है। जड़-चेतन, सबका नियामक होने के कारण उसे सारे संसार का आत्मा कहा गया है। वस्तुतः सूर्य की शक्ति से हम उस परमेश्वर की व्यापकता और शक्ति का अनुमान लगा सकते हैं जिसके अधीन ऐसे अनेक सूर्य अपना-अपना कार्य करते हैं। □

जागृवांसः समिन्धते—ऋ० १।२२।२१

जागने वाले ही प्रकाश करते हैं।

४२

प्रार्थना

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधि महारथो जायताम् । दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः । निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु । फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम् । योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥
—यजु० २२।२२

पदच्छेद—आ, ब्रह्मन्, ब्राह्मणः, ब्रह्मवर्चसी, जायताम्, आ, राष्ट्रे, राजन्यः, शूरः, इषव्यः, अतिव्याधी, महारथः, जायताम् । दोग्ध्री, धेनुः, वोढा, अनड्वान्, आशुः, सप्तिः, पुरन्धिः, योषा, जिष्णुः, रथेष्ठाः । निकामे, निकामे, नः, पर्जन्यः, वर्षतु । फलवत्यः, नः, ओषधयः, पच्यन्ताम् । योगक्षेमः, नः, कल्पताम् ॥

अन्वय तथा पदार्थ

ब्रह्मन्—हे परमेश्वर !
राष्ट्रे—राष्ट्र में
ब्राह्मणः—शिक्षक और विचारक
ब्रह्मवर्चसी—ज्ञान के तेज से युक्त
आजायताम्—हो जाये,
राजन्यः—सैनिक
शूरः—वीर
इषव्यः—बाण-कुशल
अतिव्याधी—कुशल लक्ष्य-वेधी
महारथः—महारथी
आजायताम्—हो जाये ।

धेनुः—गौ
दोग्ध्री—दूध देनेवाली,
अनड्वान्—बैल
वोढा—भार वहन करने में समर्थ
सप्तिः—घोड़ा
आशुः—शीघ्र-गामी,
योषा—स्त्री
पुरन्धिः—समृद्ध,
रथेष्ठाः—योद्धा
जिष्णुः—जयशील
(आजायताम्)—(हो जाये)।
नः—हमारी
निकामे निकामे—इच्छा के अनुसार

पर्जन्यः—मेघ
वर्षतु—वर्षा करे।
नः—हमारे
ओषधयः—अनाज
फलवत्यः—फल से युक्त होकर
पच्यन्ताम्—पकें।
नः—हमारा
योगक्षेमः—योग और क्षेम (अप्राप्त वस्तुओं की प्राप्ति और प्राप्त वस्तुओं की रक्षा)
कल्पताम्—हो।

भावार्थ—यह वेद की राष्ट्रीय प्रार्थना है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें जीवन के सभी पक्षों का महत्त्व समझकर उनके स्वास्थ्य और समृद्धि की कामना व्यक्त की गई है। सर्वप्रथम ब्राह्मण के ब्रह्मतेज की प्रार्थना है क्योंकि अध्ययन-अध्यापन करने-वाला व्यक्ति ही विचारक होता है। स्वस्थ चिन्तन के बिना राष्ट्र वास्तविक समृद्धि की ओर अग्रसर नहीं हो सकता। राष्ट्र में किसी प्रकार की भी शक्ति की कल्पना स्वस्थ-चिन्तन-जन्य योजनाओं और उनके क्रियान्वयन के बिना नहीं की जा सकती। इन सबके सन्तुलित विकास से मनुष्य नियति को भी अपने वश में कर सकता है। ईश्वर उसके किसी कार्य में बाधा नहीं बनता। वस्तुतः निर्बाध सुख-समृद्धि प्राप्त करने के लिये मनुष्य को पहले निष्ठापूर्वक चिन्तन और तदनुरूप कार्य करके अपने-आपको उसके योग्य सिद्ध करना चाहिये।

□

४३

स्तुति

इन्द्रो यातो ऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान् न नेमिः परि ता बभूव॥

—ऋ० १।३२।१५

पदच्छेद—इन्द्रः, यातः, अवसितस्य, राजा, शमस्य, च, शृङ्गिणः, वज्रबाहुः, सः, इत्, उ, राजा, क्षयति, चर्षणीनाम्, अरान्, न, नेमिः, परि, ता, बभूव॥

अन्वय तथा पदार्थ

इन्द्रः—सब का स्वामी परमेश्वर
यातः—चलते हुए का
अवसितस्य—(और) स्थावर का
राजा—शासक (है)
वज्रबाहुः—भयरूपी वज्र की शक्ति वाला (वह)
शमस्य—शान्त का
च—और
शृङ्गिणः—सींग वाले का (भी शासक है)।
उ—और
सः—वह
इत्—ही
चर्षणीनाम्—कर्मशील मनुष्यों का

राजा—शासक
क्षयति—(सर्वत्र) निवास करता है
नेमिः—चक्र की परिधि
अरान्—अरों को
न—(जैसे घेरती है) उसी प्रकार (वह)
ता—उन (सब सृष्टि के पदार्थों) को
परिबभूव—घेरकर रहता है।

भावार्थ—ईश्वर स्थावर-जंगम सारे संसार का शासक है। वह वज्र अर्थात् सबको दण्ड देने वाले भय की शक्ति से युक्त है। जिस प्रकार शासक की उपस्थिति में बिना कुछ कहे सब कार्य स्वतः सुचारु रूप से होते रहते हैं उसी प्रकार परमेश्वर की उपस्थिति में संसार के सभी कार्य स्वतः होते रहते हैं। वह सभी प्रकार के मनुष्यों को नियन्त्रण में रखता है। शान्त व्यक्ति तो उसकी महिमा मानकर स्वयं नियमों का पालन करते हैं। परन्तु समाज में कुछ व्यक्ति सींग वाले पशुओं के समान दर्पयुक्त होकर अकारण ही सज्जनों को सताने रूपी सींग मारने का कार्य करते हैं। ईश्वर इनका भी नियन्त्रण करता है और उनको इस जन्म में या अगले जन्म में दण्डित करता है। उसके विधान से बचकर कोई नहीं रह सकता। दूसरी ओर जो मनुष्य कर्मशील रहते हैं—सत्प्रयत्न करते रहते हैं, वह उनका शासक होकर उनके मध्य निवास करता है, उनकी सहायता करता है, उन्हें पुरस्कृत करता है। वह सारे संसार को उसी प्रकार व्याप्तकर उसका संचालन करता है जैसे पहिये की परिधि उसके अरों को घेरकर अक्ष के साथ जोड़कर रखती है। यदि कहीं वह परिधि टूट जाये तो अरे बिखर जायेंगे, पहिया नहीं चलेगा, गाड़ी रुक जायेगी। उसी प्रकार यह संसाररूपी चक्र परमेश्वर पर पूर्णतया आधारित है। वही सब पदार्थों-प्राणियों को उचित मात्रा में उचित स्थानों पर थामे हुए है और उन्हें उचित कार्यों में प्रवृत्त कर रहा है। परमेश्वर की यह विशेषता जानकर उसके प्रति पूर्ण समर्पण होना आवश्यक है। □
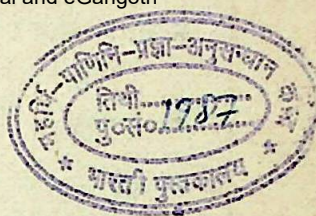
४४

प्रार्थना

**धामन् ते विश्वं भुवनमधि श्रितमन्तः समुद्रे हृद्यन्तरायुषि ।
अपामनीके समिथे य आभृतस्तमश्याम मधुमन्तं त ऊर्मिम् ।।**

—ऋ० ४।५८।११

पदच्छेद—धामन्, ते, विश्वम्, भुवनम्, अधि, श्रितम्, अन्तः, समुद्रे, हृदि, अन्तः, आयुषि । अपाम्, अनीके, समिथे, यः, आभृतः, अश्याम, मधुमन्तम्, ते, ऊर्मिम् ।।

अन्वय तथा पदार्थ

ते—(हे परमेश्वर) आपके
धामन्—आधार पर
हृदि—हृदय में
समुद्रे—समुद्र में
अन्तः—मध्य
आयुषि—जीवन निमित्त प्राण में
अन्तः—मध्य

विश्वम्—सारा
भुवनम्—संसार
अधिश्रितम्—आधार बनाकर आश्रित है ।
यः—जो
अपाम्—जल के समान व्यापक प्राणियों के
अनीके—समूह में

समिथे—(और) सङ्गतियों में
आभृत:—लाकर रखा गया है,
ते—आपके
तम्—उस
मधुमन्तम्—माधुर्य से युक्त
ऊर्मिम्—आनन्द को
अश्याम—हम प्राप्त करें।

भावार्थ—यह सारा संसार परमेश्वर के आधार पर आश्रित है। वह आधार उसी प्रकार से व्यापक है जैसे विशाल समुद्र होता है। वह आधार हृदय के समान है। जैसे हृदय अपनी क्रियाओं के द्वारा शरीर को जीवित रखता है वैसे ही परमेश्वर-रूपी आधार सारे संसार का संचालन कर रहा है। वस्तुत: हृदय के समान वह आधार ही समुद्र के समान विशाल है। उस हृदयरूपी समुद्र के मध्य और जीवन-निमत्त प्राण के मध्य उसे आधार बनाकर यह सारा संसार आश्रित है। जिस प्रकार शरीर के लिये हृदय आवश्यक है और हृदय के लिये प्राण, उसी प्रकार वह परमेश्वर इस संसार का हृदय भी है और प्राण भी। ऐसे परमेश्वर के प्रतिरूप दिव्य आनन्द की प्राप्ति की प्रार्थना की गई है। परमेश्वर आनन्दस्वरूप है। जिस प्रकार वह सर्वव्यापी है उसी प्रकार उसका आनन्द भी सर्व-व्यापी है। वह आनन्द सभी प्राणियों में स्थापित किया गया है, परन्तु अन्य प्राणी तो चैतन्य, बुद्धि और ज्ञान के अभाव में उसे प्राप्त कर ही नहीं सकते, मनुष्यों में भी कोई-कोई मनुष्य ही विशेष प्रयत्न और साधना के द्वारा उसे प्राप्त कर पाता है। वह आनन्द ही एकमात्र माधुर्य का, रस का, सुख-शान्ति का स्रोत है। उसके आगे जीवन के सभी भौतिक सुख फीके हैं। उस आनन्द को प्राप्त करने वाले के मन में माधुर्य ही माधुर्य तथा दिव्य संगीत व्याप्त रहता है। परन्तु उस आनन्द की प्राप्ति के लिए परमेश्वर की सर्व-व्यापकता का ज्ञान और अनुभव होना आवश्यक है। □

४५

स्तुति

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥

—ऋ० १०।१९०।३

पदच्छेद—सूर्याचन्द्रमसौ, धाता, यथापूर्वम्, अकल्पयत्, दिवम्, च, पृथिवीम्, च, अन्तरिक्षम्, अथ, उ, स्वः ॥

अन्वय तथा पदार्थ

धाता—विधाता परमेश्वर ने
यथापूर्वम्—पहले के समान
सूर्याचन्द्रमसौ—सूर्य और चन्द्रमा को
दिवम्—आकाश को
च—और
पृथिवीम्—पृथ्वी को
च—और
अन्तरिक्षम्—मध्यस्थ अन्तरिक्ष को
उ—और
अथ—उसके पश्चात्
स्वः—सुख को
अकल्पयत्—बनाया ।

भावार्थ—परमेश्वर सारे विश्व का धारण करने वाला तथा पोषण करने वाला है। वही बड़ी-बड़ी सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, पृथ्वी आदि प्राकृतिक शक्तियों को बनाने वाला और उनकी क्रियाओं का सञ्चालन करने वाला है। सारे भौतिक पदार्थों को बनाकर उनके द्वारा प्राणियों में सुख की भावना का सञ्चार करने वाला भी वही परमेश्वर है। यह सारी सृष्टि उसने पहले के समान बनाई है। □

मन्त्रों की वर्णानुक्रम सूची

(मन्त्रसंख्या देखिये)

वेद सम्बन्धी कुछ महत्

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती द्

- **वेदमीमांसा**
  [वेद और वेद-व्याख्या का मार्गदर्शक
- **अनादितत्त्व दर्शन**
  [वेदों के आधार पर त्रैतवाद का प्रति
- **तत्त्वमसि**
  (अद्वैत-दर्शन की सप्रमाण मीमांसा)
- **अध्यात्म-मीमांसा**
  [ईशोपनिषद् की विस्तृत व्याख्या]

◈

डॉ० कृष्ण लाल द्वारा रचित :

- **वैदिक संग्रह**
  [महत्त्वपूर्ण वैदिक सूक्तों और ब्राह्मण-अंशों की टिप्पणी सहित व्याख्य।]
- **गृह्यमन्त्र और उनका विनियोग [दुर्लभ]**
  [गृह्यसूत्रों के मन्त्रों का ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक अध्ययन]
- **संस्कृत शोधप्रक्रिया एवं वैदिक अध्ययन**
  [संस्कृत, प्रमुख रूप से वेद के शोधार्थियों के लिये मार्गदर्शक ग्रन्थ)
- **प्रह्लाद स्मारक वैदिक व्याख्यान माला [प्रथम स्तवक]**
  [वेद के सम्बन्ध में चार प्रमुख वैदिक विद्वानों के व्याख्यानों का संग्रह]

टिप्पणी—अन्तिम चार ग्रन्थ प्रकाशक से प्राप्य हैं।